॥ श्रीः ॥

तत्त्वबोधः ।

शंकरानंदप्रकाशिका
भाषाटीकासहितः ।

जिसको
श्रीस्वामिप्रकाशानंदजी महाराजके शिष्य स्वामी
शंकरानंदजीने निर्मित किया.

वह
कुँअर किसनलाल रईस क्योरारने
कल्याणमें
गंगाविष्णु श्रीकृष्णदासजीके
"लक्ष्मीवेंकटेश्वर" छापेखानेमें
मुद्रित कर प्रकाशित किया ।

प्रस्तावना ।

इस ग्रंथका मूल्य केवल जिज्ञासु पुरुषोंकी श्रद्धामात्रही है और दूसरे सन्तोंकी कृपा इसका मूल्य है श्रीयुत परमहंसोपासीन भूषण श्री १०८ श्री स्वामी केशवानंदजी महाराजके शिष्य श्री-स्वामी प्रकाशानंदजी महाराजके दास स्वामी शंकरानंदजीने निर्मित करा. और जिसको कुँमर साहिब कुमर कृष्णलाल पाँडे जिमीदार क्योरारसे सन्तोंकी प्रसन्नताके वास्ते और जिज्ञासु पुरुषोंके कल्याणके हेतु मुद्रित कर प्रकाश किया और इसी ग्रंथका तर्जुमा लाला गौरीशङ्करजीके पुत्र लाला रामसहाय वैश्य शिरौ-लीनिवासीने उर्दू भाषामें करके सर्व जनोंके हितार्थ छापेखाने नखलऊमें मुद्रित कराया है और आगे लिखे हुए ठिकानेपर यह दोनों प्रकारकी पुस्तक मिलेगी परंतु दूरदेशी महाशयोंसे मेरी यह प्राथना है कि पत्र भेजनेपरभी डांकद्वारा बैरंग भेजी जाती है.

विज्ञापनम् ।

इस तत्वबोधकी श्रीशंकरानंद प्रकाशिका भाषाटीका बनानेका वास्तव कोईभी कारण नहीं क्यों कि जिसकर मैं यों कहूं कि दुःखरूप संसारमें जीवोंको डूबते हुए देखकर उनके उद्धारके हेतु, इसको कहता हूं ऐसा कहनाभी बनता नहीं किस लिये कि जैसे कोई पुरुष कहे कि मृगतृष्णाके जलमें वन्ध्याका पुत्र डूबता है उसको मैं निकालूं यह कहना त्रिकालमेंभी नहीं बनता क्योंकि प्रथम तौ मृगतृष्णाके जलकाही अत्यन्ताभाव है अर्थात् तीन काल है नहीं और दूसरे वन्ध्याके पुत्रका होनाही अत्यन्त असम्भव है तौ फिर उसका डूबना और उसका निकालना कहाँ बन सक्ता है इसी प्रकार प्रथम तो दुःखरूप संसारकाही अत्यन्ताभाव है और दूसरे वन्ध्याके पुत्रवत् जीवका दुःखरूप संसारमें डूबना अत्यन्त असम्भव है तौ फिर उनके उद्धारका हेतु इस अपने कथनको कहूं तो कैसे सिद्ध हो सक्ता है केवल चिद्विलास है अर्थात् चैतन्यका विलास है वास्तव कथन श्रवण कुछ बनता नहीं.

पुस्तक मिलनेका ठिकाना–

१ पास कुँमर साहिब कुँमर कृष्णलालजी; मुकाम क्योरार, रियासत रामपुर, डाँकखाना मिलिक.

२ पास श्रीयुत रावजी साहिब श्री १०८ श्रीमहाराज भुम्मनालजी के; मुकाम खासराज करौली.

३ लाला रामसहाय चौधरी; मुकाम सिरौली, जिला बाँसबरेली.

४ बखशीजी साहिब, बखशी प्यारे लाल मेंबर कुमेटी; मुकाम वेसवाँ, जिला अलीगड.

अथ

अनुक्रमणिका.

इति अनुक्रमणिका समाप्त.

॥ ॐ ॥

अथ निर्गुणोपासनाचक्रम् ।

तत्त्वमसि सामवेदः

शुद्धसत्त्वप्रधान	मलिनसत्त्वप्रधान
जाग्रत् अवस्था	जाग्रत् अवस्था
स्थूलशरीर	स्थूलशरीर
समष्टिअभिमानी	व्यष्टिअभिमानी
विराट आत्मा	विश्वात्मा

अहं ब्रह्मास्मि यजुर्वेदः

। अ ।

वास्तव अभेद

ॐ

इत्योंकारार्थः ॥

॥ हरिः ॐ ॥

अथ

शंकरानंदप्रकाशिकाभाषाटीकासहितः

तत्त्वबोधः ।



अथ टीकाकारका मंगलाचरण.

॥ दोहा ॥

श्रीआनंदप्रकाश विभु, जिनमैं जक्त असार ॥ सो निज आतमरूप लख, नमो करूं उरधार ॥ १ ॥
तिनकी कृपा दृष्टिसैं, तत्त्वबोध कर कीन ॥ शंकरानंदप्रकाशिका, भाषा भाष्य नवीन ॥ २ ॥

टीका ॥ श्री ॥ अर्थात् शांतस्वरूप जो मेरे गुरु प्रकाशानंदजी महाराज हैं तिनको मैं परम प्रियरूप अपना आत्मा लखकर हृदयमैं धारण करके नमस्कार

करता हूं. कैसे हैं मेरे गुरु कि जो ॥ विभुः ॥ अर्थात् संपूर्ण जगतमैं व्यापक हैं (तंतुपटवत्) जैसे वस्त्रके बीचमैं व्याप्य और व्यापक अर्थात् टेढे और सूधे धागे एकही हैं दूसरा कोई नहीं इसी प्रकार मेरे गुरु आपही व्यापक हैं और आपही व्याप्य हैं ॥ और फिर कैसे हैं कि, जिनमैं संपूर्ण जगत् ॥ असार ॥ अर्थात् कल्पित है कि, जैसे सुवर्णके बीचमैं कटककुंडलादिक भूषण कल्पित हैं और मृत्तिकामैं घटमठादिक पदार्थ कल्पित हैं इसी प्रकार मेरे गुरुमैं संपूर्ण जगत् कल्पित है ॥ वास्तव जो कुछ दृश्यादृश्य है सो सब मेरे गुरुही हैं ॥ १ ॥ तिन गुरुओंकी कृपादृष्टिसैं तत्त्वबोधकी शंकरानंदप्रकाशिका नवीन भाषाटीका रची जाती है कि, जिसके विचारसै शीघ्रही अनर्थकी निवृत्ति और परमानंदकी प्राप्तिरूप मोक्षको पुरुष प्राप्त होंगे ॥ परंतु इस ग्रंथ करके वही पुरुष आनंद उठावेंगे कि, जिनकी अपने श्रीगुरुके चरणोमैं पूर्ण प्रीति होगी ॥ क्योंकि, आत्मतत्वके लखानेवाले श्रीगुरुही हैं ॥ २ ॥

॥ अथ सूत्रकारका मंगलाचरण ॥

॥श्लोक॥ वासुदेवेन्द्रयोगीन्द्रं नत्वा ज्ञानप्रदं गुरुम् ॥ मुमुक्षूणां हितार्थाय तत्त्वबोधोभिधीयते ॥ १ ॥

अन्वयः ॥ मया शंकराचार्येण तत्त्वबोधः अभिधीयते ॥ किं कृत्वा वासुदेवेन्द्रयोगीन्द्रं गुरुं नत्वा ॥ कथंभूतं गुरुं ज्ञानप्रदम् ॥ कस्मै प्रयोजनाय मुमुक्षूणां हितार्थाय ॥ इत्यन्वयः ॥ १ ॥

टीका॥मैं जो शंकराचार्य हूँ सो तत्व जो आत्मा तिसका जो ज्ञान तिसको कहता हूँ अथवा तत्व जो पृथिवी जल तेज वायु आकाश तिनका बोध अर्थात् कार्य कारण प्रकार तिसको कहता हूं॥ क्या करके कि वासुदेवेन्द्रयोगीन्द्र अर्थात् सच्चिदानंदस्वरूपान्तर्यामी जो हैं मेरे गुरु तिनको नमस्कार करके ॥ कैसे गुरुको॥ज्ञानके देनेवाले॥ ऐसे गुरुको नमस्कार करके मुमुक्षुजनोंके हितार्थ अर्थात् ॥ दुःखरूप जो संसार तिससे निवृत्त होकर परमानंदस्वरूप जो अपना आत्मा तिसको प्राप्त होनेकी

इच्छा है जिन पुरुषोंको तिनके कल्याणके अर्थ तत्त्वबोधको कहता हूँ ॥ १ ॥

॥ अथ ग्रंथका प्रयोजन वर्णन ॥

साधनचतुष्टयसम्पन्नाधिकारिणां मोक्षसाधनभूतं तत्वविवेकप्रकारं वक्ष्यामः॥२॥

टीका॥ साधन जो चार तिन करके संपन्न जो अधिकारी तिनके वास्ते मोक्षसाधनरूप जो तत्वविवेकका प्रकार ॥ अर्थात् पृथिवी जल तेज वायु आकाश तिनका कार्य्य कारण भावसे चैतन्यमें लय होना ॥ अथवा मोक्षसाधनरूप जो ज्ञान और तत्वविवेकका जो प्रकार तिसको कहता हूँ ॥ २ ॥

प्रश्न ॥ ज्ञान किसको कहते हैं ॥ १ ॥

उत्तर ॥ अन्तःकरणकी जो ब्रह्माकार वृत्ति तिसको ज्ञान कहते हैं ॥ १ ॥

शंका ॥ जिस करके अन्तःकरणकी ब्रह्माकार वृत्तिकोही ज्ञान कहेंगे तो तिसकरके अविद्याकी निवृत्ति न होगी क्योंकि जो कार्य होता है सो कारणको नाश नहीं

कर सकता और अन्तःकरणकी वृत्ति तथा और जो कुछ दृश्य प्रपंच है तिस सबका कारण अविद्या है इसलिये कार्यरूप जो अन्तःकरणकी वृत्ति सो अपना कारणरूप जो अविद्या तिसको नाश नहीं करेगी ॥ २ ॥

उत्तर ॥ यह नियम नहीं है कि जो कार्य्य होता है सो कारणको नाश नहीं करता किन्तु करता है जैसे कपूर और अग्नि इन दोनोंका जो संबन्ध सो है कार्य्य और कपूर है कारण जैसे कपूर और अग्निका संबंधरूप जो कार्य्य सो कपूरको नाश कर देता है किंचित् मात्रभी रहने नहीं देता इसी तरह अन्तःकरणकी जो ब्रह्माकार वृत्ति सो अविद्याको नाश करती है इसलिये अन्तःकरणकी जो ब्रह्माकार वृत्ति उसीको ज्ञान कहते हैं ॥ २ ॥

शंका ॥ आपने पूर्व जो कहा कि साधनों करके संपन्न जो पुरुष हैं तिनके वास्ते मोक्ष साधन रूप जो ज्ञान तिसको कहता हूं इससे यह सिद्ध हुआ कि साधन ज्ञानका कारण है और साधन है अनित्य क्योंकि अनुष्ठानके बाद साधनोंकी प्रतीति होती नहीं इसलिये सा-

धन अनित्य है और साधन अनित्य होनेसे साधनोंसे सिद्ध हुआ जो ज्ञान सोभी अनित्य होगा क्योंकि जैसा कारण होता है वैसाही कार्य्य होता है इस तरह कारण-रूप साधन अनित्य होनेसे कार्यरूप ज्ञानभी अनित्य होगा इसलिये अनित्य ज्ञानकी प्राप्तिकी इच्छाही निष्फल है और साधनसंपन्न होनाभी निष्फल है ॥ ३ ॥

उत्तर ॥ कार्य्य कारणरूप तो होता है परंतु निमित्त कारणरूप नहीं होता किन्तु उपादान कारणरूप होता है जैसे घटका निमित्त कारण कुम्हार और उपादान कारण मृत्तिका है जैसे घट उपादानकारण मृत्तिकारूप है निमित्त कारण कुम्हाररूप नहीं इसी प्रकार साधन ज्ञानका निमित्त कारण है और बुद्धि सहित आभास ज्ञानका उपादान कारण है इसवास्ते ज्ञान निमित्त कारण साधन रूप नहीं किन्तु उपादान कारण आभास-रूप है ॥ और आभास है चैतन्य और नित्य तो फिर ज्ञान किस युक्तिसे अनित्य सिद्ध हो सकता है किन्तु ज्ञान नित्य है और नित्य ज्ञानकी प्राप्तिकी इच्छाभी सफल है और साधनसंपन्न होनाभी सफल है ॥ ३ ॥

शंका ॥ कार्य भलेही उपादान कारणरूप हो परंतु कार्य अनित्य होता है जैसे घट बेशक उपादान कारण मृत्तिकारूप है परंतु घट नाशवान् तो है ॥ इसी प्रकार ज्ञान उपादान कारण आभास चैतन्य रूप भलेही हो परंतु ज्ञान नाशवान् है क्योंकि जो कार्य होता है सो सब नाशवान् होता है ॥ ४ ॥

उत्तर ॥ वो कार्य नाशवान् होता है कि जो कारण-से विलक्षणरूप करिके कुछ कालतक स्थिति रहता है जैसे घट मृत्तिकासे विलक्षणरूप करिके स्थित होता है इसलिये वह नाशवान् है और यहांपर तो ज्ञानके होते-ही कार्य्यकारण भाव अर्थात् ज्ञाता ज्ञेय ज्ञान भाव निवृत्त हो जाता है क्योंकि ज्ञाताभी आत्मा है और ज्ञेयभी आत्मा है जब कि ज्ञाताभी आत्मा और ज्ञेय-भी आत्मा तो फिर ज्ञान कुछ दूसरी वस्तु नहीं किन्तु ज्ञानभी आत्माही है और आत्मा है शुद्ध सच्चिदानंद-स्वरूप इस लिये ज्ञानभी शुद्ध सच्चिदानंदस्वरूप है ॥ तो फिर साधन अनित्य होनेसें ज्ञान अनित्य नहीं हो सकता और वास्तवमें तो ज्ञानकों कारणकी अपेक्षाही

नहीं क्योंकि आत्मा ज्ञानस्वरूप है ॥ केवल इतनाही है कि जैसे वस्त्र स्वयंही सफेदरूप है परंतु मलके संबन्धसे उसकी सफेदी मालूम नहीं होती और मसालेकरिके मल दूर होनेसे सुफेदी स्वयंही प्रगट हो जाती है इसलिये मसालेकी आवश्यकता है ॥ इसी प्रकार आत्मा ज्ञान-स्वरूप है परंतु अविद्या करके अज्ञानी प्रतीत होता है और अविद्याका नाश विवेकादिक साधनोंसे होता है इसलिये साधनोंकी अवश्य अपेक्षा है वे साधन ये हैं तिनकों श्रवण करो ॥ ४ ॥ २ ॥

॥ अथ चार साधन वर्णन ॥

साधनचतुष्टयं किम् ॥ नित्यानित्यवस्तुविवेकः ॥ १ ॥ इहामुत्रार्थफलभोगविरागः ॥ २ ॥ शमादिषट्कसंपत्तिः ॥ ३ ॥ मुमुक्षुत्वं चेति ॥ ४ ॥ ३ ॥

टीका ॥ प्रश्न ॥ साधन चार कौनसे हैं सो कहो ॥ उत्तर ॥ नित्य और अनित्य वस्तुका जो यथावत ज्ञान तिसकों विवेक कहते हैं वही प्रथम साधन है॥१॥

और नित्यानित्य वस्तुका विचार होकर अनित्य जो इस लोक और परलोकके भोग तिनके त्यागकों विराग कहते हैं यह दूसरा साधन है ॥ २ ॥ और शमसें आदि लेकर जो षट् संपत्ति है यह तीसरा साधन है ॥ ३ ॥ और मुमुक्षुता यह चौथा साधन है ॥ ४ ॥ ३॥

॥ अथ विवेक वर्णन ॥

नित्यानित्यवस्तुविवेकः कः ॥ नित्यवस्त्वेकं ब्रह्म तद्व्यतिरिक्तं सर्वमनित्यम्॥ अयमेव नित्यानित्यवस्तुविवेकः ॥ ४ ॥

टीका ॥ प्रश्न ॥ नित्य और अनित्य वस्तुका जो ज्ञान सो क्या है ॥

उत्तर ॥ शुद्ध सच्चिदानंदस्वरूप जो एक ब्रह्म है सोई तो नित्य है और तिससे जो व्यतिरिक्त दृश्य प्रपंच अर्थात् संसार सो सब अनित्य है क्यों कि संसार मनका संकल्पमात्रही है वास्तव संसार कुछ वस्तु नहीं है ऐसे दृढ ज्ञानकों विवेक कहते हैं ॥

प्रश्न ॥ वेदमें तथा अन्य शास्त्रोंमें और पुराणोंमेंभी परमात्मासें संसारकी उत्पत्ति ऋषियोंनें लिखी है तो फिर आप संसारको मनका संकल्पमात्र कैसे कहते हो ॥

उत्तर ॥ जहांपर ऋषियोंने संसारकी उत्पत्ति परमात्मासे लिखी है सो वहांपर रोचक भयानक वाक्यों-के अधिकारियोंके वास्ते लिखी है किन्तु यथार्थ नहीं है ॥

प्रश्न ॥ रोचक भयानक यथार्थ वाक्य कौनसे हैं सो कहो ॥

उत्तर ॥ रोचक नाम लोभका है और भयानक नाम भयका है और यथार्थ नाम ठीकठीकका है ॥ दृष्टान्त ॥ जैसे किसी बालकके शरीरमें बहुतसी फुनसी हो गई तिस बालकको दुःखी देखकर तिसकी मातानें नीम अर्थात् औषधी उसको पिलाना चाहा परंतु उस बालकनें उसको कटु जानकर नहीं पिया तब उसकी मातानें उसको लोभ दिया कि इस औषधीकों तुम पीलोगे तो मैं तुमकों मीठा दूंगी परंतु मीठेके देनेसें उसकी बिमारी बहुत बढ

जाती इसलिये उसकी माताका मीठा देनेका तात्पर्य्य नहीं था और न वहां मीठा था परंतु औषधी पिलाकर उसकी फुनसियोंकों दूर करनेंसेही तात्पर्य्य था और जिस बालकने लोभसें उस औषधीकों नहीं पिया तब डरुको भय दिया कि इस औषधीकों तुम न पिओगे तो तुमको हउ आयकर लेगा इस वाक्यके कहनेका भी यह तात्पर्य्य नहीं था कि मेरे बालककों हउ आयकर ले किन्तु भय देके औषधी पिलाकर उसकी फुनसियोंकों दूर करनेंसेही तात्पर्य्य था और जब उसकी मातानें ऐसा देखा कि यह बालक औषधीके गुनको जानता है तब उसके वास्ते रोचक भयानक अर्थात् लोभ और भय देनेका कुछभी प्रयोजन न रहा किन्तु यथार्थ वाक्यही कहा कि इस औषधीके पीनेसें तुमारी सब फुनसी जाती रहेंगी इसी प्रकार बालकरूपी पुरुषोंको दुःखरूप फुनासियों करिके दुःखी देखकर मातारूप ऋषियोंनें भगवत आराधन रूप औषधी पिलाकर दुःखरूप फुनासियोंको नाश करना चाहा परंतु बालकरूप पुरुषोंनें कठिन जानकर नहीं ग्रहण किया तब माता-

रूप ऋषियोंनें रोचक भयानक शब्द उनके वास्ते कहे कि वो परमात्मा सर्वशक्तिमान् ऐसा है कि जो सम्पूर्ण संसारकों उत्पन्न करता है और पालन करता है और संहार करता है तिस सर्वशक्तिमान परमात्माका ध्यान स्मरण करोगे तौ वह परमात्मा तुमको स्वर्गादि सुखोंका दाता होगा और जो तुम लोग उस परमात्माका ध्यान स्मरण नहीं करोगे तौ वोही परमात्मा तुमकों महान घोर नरकमें डारैगा इन रोचक भयानक वाक्योंका यह तात्पर्य्य नहीं है कि परमात्मानेंही संसारकों उत्पन्न किया है किन्तु सर्व शक्तिरूप लोभ दिखाकर भगवत् आराधन रूप औषधी पिलाकर दुःखरूप फुनासियोंका नाश करनेसेंही तात्पर्य्य है क्योंकि जो उन ऋषियोंका यह अभिप्राय होता कि परमात्मानेही संसारको उत्पन्न किया है तौ वोही ऋषि उन्ही अपने ग्रंथोंमें ऐसा नहीं लिखते कि संसार स्वप्नकी तुल्य है अर्थात् मनका संकल्प मात्र है वास्तव कुछ वस्तु नहीं है परंतु उत्तम अधिकारी अर्थात् कर्म उपासनासे मलविक्षेप दोष

दूर हो गये हैं जिनके ॥ तिनके वास्ते ऐसा लिखा है कि संसार केवल मनका संकल्पमात्रही है वास्तव कुछ वस्तु नहीं और योगवासिष्ठमेंभी श्रीरामचंद्रजीसें मुनिवर वसिष्ठजीने यही उपदेश किया है कि हे रामचंद्र ! जो कुछ यह दृश्य प्रपंच है सो सब तेरे मनकाही संकल्प है और वास्तव इसका उत्पन्न करनेवाला कोई नहीं और श्रीशुकदेवजीकोंभी राजा जनकनें यही उपदेश किया है कि हे शुकदेव ! जो तेरे देखनें सुननेमें आता है सो सब तेरे चित्तहीसें उत्पन्न हुआ है और चित्तहीमें लय हो जाता है वास्तव कुछ वस्तु नहीं और इसको दृष्टि सृष्टि बाधभी कहते हैं और जो परमात्मासेही संसारकी उत्पत्ति मानेंगे तो देश काल बिना कोई वस्तु उत्पन्न होती नहीं और परमात्मामें देशकालका अभाव है और जो यों कहो कि प्रथम देशकालको उत्पन्न करके संसारको उत्पन्न किया ऐसा कहनाभी बनता नहीं क्योंकि उस देश कालके उत्पन्न करनेंमेंभी दूसरे देश कालकी अपेक्षा होगी और उस देश कालके उत्पन्न करनेंमें और देश कालकी अपेक्षा होगी इसी प्रकार अनवस्था दोष आनेंसे संसा-

रकी उत्पत्ति किसी युक्तिसेभी सिद्ध न होगी इससे यह सिद्ध हुआ कि संसार संकल्पमात्रही है और ब्रह्म सत्य है ऐसे दृढ ज्ञानको विवेक कहते हैं और यह साधन सर्व साधनोंका मूल है ॥ ४ ॥

॥ अथ विरागवर्णन ॥

विरागः कः॥ इह स्वर्गभोगेषु च इच्छाराहित्यम् ॥ ५ ॥

टीका ॥ प्रश्न ॥ विराग किसकों कहते हैं ॥

उत्तर ॥ इस लोक और परलोकके जो भोग तिनकों मिथ्या और दुःखरूप जानकर तिनका त्याग करना तिसकों विराग कहते हैं ॥ ५॥

प्रश्न ॥ जिस करके इस लोकके भोग दुःखरूप होवें तो अनेक पुरुष स्त्री पुत्र धन आदिके वास्ते अनेक प्रकारके यत्न करते हैं सो नहीं करना चाहिये और जो अनेक सज्जन पुरुष इस लोकके भोगोंको त्याग कर हठयोगादिक अनेक क्रिया स्वर्गभोगोंके वास्ते करते हैं जिस करके स्वर्गके भोग दुःखरूप होवें तो वो सज्जन पुरुष उनके

वास्ते यत्न नहीं करै इससे यह सिद्ध हुआ कि इस लोक और परलोकके भोगोंमें दुःख सुख मिला हुआ है क्योंकि भोग सब नाशवान् हैं यह तो दुःख है ॥ और अनेक प्रकारके भोग भोगनेमें आते हैं यह सुख है इस प्रकार सुख दुःख मिश्रित होनेसे दुःख जानकर जो सुखको त्याग करै तो फिर सुख जानकर दुःखका ग्रहण क्यों न कर ले क्यों कि जितना दुःख है उतनाही सुख है ॥

उत्तर ॥ जैसे मीठेके बीचमें विष मिला हुआ हो तो उस मीठेके लोभसे विषका खाना किसी पुरुषकोभी स्वीकार नहीं किन्तु विषको देखकर मीठेकों सब पुरुष त्याग देते हैं इसी प्रकार भोगोंमें सुख दुःख मिश्रित मानेंगे तौभी दुःखकों सुखके लोभसे कोईभी पुरुष स्वीकार नहीं करता किन्तु दुःखको देखकर सुखका त्याग करना सब पुरुषोंको उचित है और वास्तवमें तो भोगोंमें सुखका लेश मात्रभी नहीं किन्तु भोग दुःख रूप हैं क्योंकि प्रथम तो भोगोंकी प्राप्तिके वास्ते अनेक प्रकारके यत्न करनेसे दुःख उठाने पडते हैं और जब भोग प्राप्त होते हैं तब अपनेंसे अधिक भोगोंवाले पु-

रुषको देखकर ऐसा दुःख होता है कि हमनें ऐसे कर्म नहीं किये कि जिससे इनकी बराबर मेरेकोभी भोग प्राप्त होते ॥ और जो अपनें बराबर भोगोंवाला है तिसको देखकर ऐसा दुःख होता है कि हमारी बराबर औरभी कोई दूसरा है ॥ और जो अपनेंसे न्यारा भोगोंवाला है तिसको देखकर अहंकाररूप ऐसा दुःख होता है कि हमारे आगे तौ यह कुछभी वस्तु नहीं ॥ और पुण्योंके क्षीण होने पश्चात् फिर जन्म मरण दुःख रूप संसारमें पडता है इस लिये इस लोक और परलोकके भोग दुःखरूप हैं सुखका लेशमात्रभी नहीं इस वास्ते इस लोक और परलोकके भोगोंको त्याग करना इसको विराग कहते हैं ॥ परंतु विराग दो प्रकारका होता है एक दोष दृष्टिका, दूसरा मिथ्यात्वदृष्टिका ॥ दृष्टांत ॥ एक पहाडके ऊपर गौ चरानेवाले लडकोंनें शहरसे पीतल पत्री लाकर एक सिलाके ऊपर लगाके खेलते रहे जब कि वो लडके घरको चले गये तब उसी वक्त उस पहाडके ऊपर एक मार्ग था उस मार्गमें एक

वैश्य चला आया वह वैश्य उस शिलाको देखकर कहने लगा कि, इस स्वर्णकी शिलाको घरमें ले चले तब बहुत धनवाले हो जाँयगे परंतु बडा आश्चर्य है कि उस वैश्यने बहुतसा धन होनेको अच्छा समझा मगर यह विचार नहीं किया कि जितना धन बढेगा उतनाही दुःख बढेगा जैसे किसी भंगीके पास बहुतसा रुपया बढ गया तब उस भंगीने दूसरे भंगीसे एक मुहल्ला पाखाने साफ करनेको उस रुपयेसे मोल ले लिया और अपनेको धनवाला और बहुत बडा आदमी समझने लगा परंतु उसने यह विचार नहीं किया कि आगे तो एक मुहल्लेके पाखाने साफ करने पडते थे अब दो मुहल्लेके पाखाने साफ करने पडेंगे इसी प्रकार उस वैश्यने ऐसा विचार नहीं किया कि जितना धन बढैगा उतनाही दुःख बढैगा परंतु धनके लोभसे उस शिलाको घरमें ले जाना चाहा परंतु जब उसके थोडा समीप गया तब उसको ऐसा भय हुआ कि राजाको खबर हो जावेगी तो राजा हमको बहुत दंड देगा ऐसी दोषदृष्टिसे उसको त्याग कर चला

आया जब घरमें आया तो जितना धन उसका था सब चोर ले गये तब उस वैश्यने ऐसा विचार किया कि रात्रिमें जाकर जब राजाको नहीं मालूम हो तब उसको घरमें ले आवे फिर वैसेही धनवाले हो जावेंगे जब वहां जाकर देखा तो वह पाषाणकी शिला निकली देखकर पश्चात्ताप करने लगा जैसे उस वैश्यने उस शिलाको दोषदृष्टिसे त्याग किया था इस लिये उस वैश्यको फिरभी उस शिलाकी इच्छा हुई इसी प्रकार जो पुरुष भोगोंको दोषदृष्टिसे अर्थात् भोगोंमें दुःख जानकर त्याग करता है उस पुरुषको फिरभी भोगोंकी इच्छा होती है और जो उन गौ चरानेवाले लडकोंकी सब गौ जाती रहे परंतु उनको ऐसी इच्छा कभी नहीं होगी कि उस शिलाको घरमें लाकर गौ खरीद लें क्योंकि उन्होंने उस शिलाको मिथ्यात्वदृष्टिसे अर्थात् पाषाण जानकर त्याग किया था॥ इसी प्रकार जो पुरुष भोगोंको मिथ्या जानकर त्याग करता है उसको फिर भोगोंकी इच्छा नहीं होती और मिथ्या जानकर त्याग करनेवाले पुरुषका पूर्ण विराग कहा जाता है॥ और भोगोंको मिथ्या जानना वि-

रागका कारण है ॥ और मिथ्या जानकर त्याग करना विरागका स्वरूप है ॥ और फिर उसका ग्रहण नहीं करना यह विरागका कार्य है ॥ इति विरागः ॥ ५ ॥

अथ शमादिषट्कसम्पत्तिवर्णन ।

शमादिषट्कसम्पत्तिः का । शमो दम उपरमस्तितिक्षा श्रद्धा समाधानं चेति ॥ ६ ॥

टीका ॥ प्रश्न ॥ शमसे आदि लेकर षट् सम्पत्ति कौनसी है ॥

उत्तर ॥ शम १ दम २ उपरम ३ तितिक्षा ४ श्रद्धा ५ समाधान ६ इनको शमादिषट्कसम्पत्ति कहते हैं ॥ ६ ॥

अथ शमवर्णन ।

शमः कः । मनोनिग्रहः ॥ ७ ॥

टीका ॥ प्रश्न ॥ शम किसको कहते हैं ॥

उत्तर ॥ मनको विषयोंसे रोकना इसको शम कहते हैं ॥

प्रश्न ॥ मन बहुत कालसे विषयोंको परमप्रिय जानकर विषयोंमें आसक्त हो रहा है तिसका विषयोंसे विरक्त

होना बहुत कठिन मालूम होता है तिसके विषयोंसे विरक्त होनेकी कौनसी युक्ति है सो कहो ॥

उत्तर ॥ मनका विषयोंसे विरक्त होना दो प्रकारसे है एक तौ सच्छास्त्रके विचारमें अभ्यास और दूसरे विराग ॥ दृष्टांत ॥ कोई बालक मार्गमेंसे अस्थिके टुकडेको परम प्रिय जानकर अपनी छातीसें लगा लाया ॥ जब घरमें आया तब उसकी माताने उस बालकको कहा कि हे बेटा! इसको तू फेंक दे तब तौ उसने और जोरसे पकड लिया तब उसकी माताने उसको लड्डू दिखाया तब उस बालकने लड्डूके देखतेही अस्थिको छोडकर लड्डूको पकड लिया ॥ इसी प्रकार मनरूपी बालकने विषयरूपी अस्थिको परम प्रिय जानकर पकड रक्खा है और मातारूप उद्धारकी इच्छावाला जो पुरुष है सो उसने महात्माओंका सत्संग और भगवदाराधनरूप लड्डू जब मनरूपी बालकको दिखाया तब उसी वक्त मनरूपी बालकने अस्थिरूप विषयोंको छोडकर सत्संग और भगवदाराधनरूप लड्डूको पकड

लिया ॥ इस प्रकार महात्माओंका सत्संग करनेसे और निष्काम भगवदाराधन करनेसे और विरागसे मन विषयोंसे विरक्त होता है और मनके विषयोंसे विरक्त होनेकोही शम कहते हैं ॥ ७ ॥

अथ दमवर्णन ।

दमः कः । चक्षुरादिबाह्येन्द्रियनिग्रहः ॥ ८ ॥

टीका ॥ प्रश्न ॥ दम किसको कहते हैं ॥

उत्तर ॥ चक्षुसे आदि लेकर जो बाह्य इन्द्रियें हैं तिनको शब्दादि विषयोंसे रोकना तिसको दम कहते हैं ॥

प्रश्न ॥ कानोंका स्वाभाविक धर्म शब्दको सुननेका है और नेत्रोंका स्वाभाविक धर्म रूपको देखनेका है इत्यादि और सर्व इन्द्रियोंके जो स्वाभाविक धर्म हैं तिनको ग्रहण नहीं करना अर्थात् मूक होकर एकान्तमें बैठ सर्व क्रियाको त्याग करना इसको दम कहते हैं या कुछ और ॥

उत्तर ॥ जो पुरुष ऊपरसे तो विषयोंको त्याग देता है परंतु मनमें विषयोंकी इच्छा रखता है सो पुरुष जितेन्द्रिय नहीं कहा जाता ॥ किन्तु कपटी कहा जाता

है॥ इस लिये इन्द्रियें अपने अपने स्वाभाविक धर्मोंमें भलेही प्रवृत्त हों परंतु उनमें आसक्त न होना और अपनी खुशीसे इन्द्रियोंको विषयोंमें प्रवृत्त नहीं करना इसको दम कहते हैं॥ और इन्द्रियोंका विषयोंमें आसक्त हो जाना यही महान् दुःखका हेतु है॥ दृष्टांत॥ जिस मृगकी नाभीमें कस्तूरी होती है उस मृगको केवल कानोंही का विषय है इस लिये वधिक उसको शब्द सुनाकर मस्त कर लेता है और मारकर उसकी नाभीमेंसे कस्तूरी निकाल लेता है वो मृग केवल कानोंहीके विषयसे शरीरको त्याग देता है॥ इसी प्रकार हस्ती स्पर्शके विषयसे पराधीन होकर अवस्थाभर दुःख पाता है॥ और पतंग नेत्रोंके विषयमें आसक्त होकर दीपकमें जल मरता है॥ और मच्छी जिह्वाके विषयमें आसक्त होकर कांटेमें फसके मर जाती है॥ और भौंरा केवल नासिकाके विषयमें आसक्त होके कमलमें मूँदकर शरीरको छोड देता है इस प्रकार ये पाचों एक एक विषयमें आसक्त होकर शरीरको छोड देते हैं और महादुःखको पाते हैं परंतु यह मनुष्य तो इन्द्रियोंके पांचों विष-

योंमें आसक्त हो जाता है तौ फिर न जानें इसकी क्या दुर्दशा होगी ॥ और श्रीकृष्णजीनेभी श्रीमद्भगवद्गीतामें लिखा है कि हे अर्जुन! इन्द्रियोंके जो विषय हैं सो सब शीतोष्ण सुख दुःखके देनेवाले हैं और आदि अन्तवाले हैं अर्थात् मिथ्या दुःखरूप हैं इसवास्ते बुद्धिवान् पुरुष इनमें रमण नहीं करते ॥ और जैसे कछुआ अपने सब अंगोंको अपनेहीमें समेट लेता है तब निर्भय और सुखी हो जाता है इसी प्रकार जो पुरुष अपनी इन्द्रियोंको विषयोंसे अपनेहीमें समेट लेता है वह पुरुष निर्भय और सुखी हो जाता है इस वास्ते इन्द्रियोंको विषयोंसे अवश्य निग्रह करना चाहिये और इन्द्रियोंको विषयोंसे निग्रह करनेकोही दम कहते हैं ॥ ८ ॥

अथ उपरमवर्णन।

उपरमः कः। स्वधर्मानुष्ठानमेव ॥ ९ ॥

टीका ॥ प्रश्न ॥ उपरम किसको कहते हैं सो कहो ॥

उत्तर ॥ स्वधर्मका जो अनुष्ठान करना तिसको उपरम कहते हैं ॥

प्रश्न॥स्वधर्म कौनसा है कि जिसका अनुष्ठान कि-या जाय ॥

उत्तर ॥ स्वधर्म यह है कि मनुष्यशरीरको पाकर विषयोंसे विरक्त होके मोक्षका उपाय करना क्योंकि मनुष्यशरीर मोक्षका द्वार है॥ अर्थात् मनुष्यशरीरमेंही मोक्षकी प्राप्ती होती है अन्य शरीरमें नहीं ॥ दृष्टांत ॥ जैसे कोई एक अंधा पुरुष किसी किलेमें घूम रहा था और वह शिरसे गंजाभी था परंतु वह ऐसा दुःखी होकर घूम रहा था कि उसको किलेके बाहिर निकलनेका रास्ता नहीं मिलता था मगर प्रारब्धबलसे कोई नेत्रों-वाला पुरुष आय प्राप्त हुआ तब उस अंधेने उससे कहा कि मेरेको इस किलेके बाहिर निकालो तब नेत्रवाले पुरुषने उस अंधेका हाथ दिवालको लगाकर कहा कि इस दिवालको हाथ लगाये लगाये चला जा जब दर-वाजा आवेगा तब उस दरवाजे होकर किलेके बाहिर निकल जाना परंतु दिवालसे हाथ नहीं हटाना इसी प्र-कार वह अंधा चला आया मगर जब दरवाजा आया

तब उसके शिरमें जो गंज था उस गंजको दोनों हाथोंसे खुजवाता गया और चलता गया इतनेहीमें दरवाजा निकल गया तब फिर उसको उस किलेमें महान् दुःखी होकर घूमना पडा इसी प्रकार जन्म मरणरूप किलेमें ज्ञानरूप नेत्रों करके हीन अर्थात् अंधे पुरुष घूम रहे हैं और महान् दुःख पाते हैं परंतु उस जन्ममरणरूप किलेसे बाहर नहीं निकल सक्के और किसीके प्रारब्ध-बलसे ज्ञानरूपी नेत्रोंवाला गुरु आय प्राप्त हुआ तब उस गुरुने उस अंधेका शुभ कर्मरूपी दिवालको हाथ लगाकर यह कहा कि इसी प्रकार चले जाना शुभकर्म-रूप दिवालसे हाथ नहीं उठाना जब मनुष्यशरीररूप दरवाजा आवेगा तब जन्ममरणरूप किलेसे बाहर नि-कल जाना इसी प्रकार वह अंधा चला आया परंतु जब मनुष्यशरीर रूप दरवाजा आया तब वह अंधा शुभ-कर्मरूपी दिवालसे हाथ उठाकर दोनों हाथोंसे गंजको खुजवाने लगा अर्थात् विषयोंमें प्रवृत्त होकर मनुष्यश-रीररूप दरवाजेको निकाल दिया जब मनुष्यशरीर छूट

गया तब फिर जन्ममरणरूप किलेमें घूमकर दुःख पाना पडेगा ॥ इससे यह सिद्ध हुआ कि मनुष्य शरीर दुःखरूप किलेसे निवृत्त होकर परमानंद स्वरूप अपने आत्माकी प्राप्तिरूप मोक्षका दरवाजा है इसलिये मनुष्यशरीरका यही स्वधर्म है कि विषयोंसे निवृत्त होकर मोक्षका उपाय करना और ऐसे उपाय करनेकोही उपरम कहते हैं ॥ ९ ॥

अथ तितिक्षावर्णन।

तितिक्षा का । शीतोष्णसुखदुःखादिसहिष्णुत्वम् ॥ १० ॥

टीका ॥ प्रश्न ॥ तितिक्षा किसको कहते हैं ॥

उत्तर ॥ शीतोष्ण सुखदुःख इनसे आदि लेकर और जो द्वंद्व तिन सबको सहारना अर्थात् अभीष्ट वस्तुके प्राप्त होनेसे रागको नहीं प्राप्त होना और निकृष्ट वस्तुके प्राप्त होनेसे द्वेषको नहीं प्राप्त होना इसको तितिक्षा कहते हैं ॥

प्रश्न ॥ जो पुरुष शीतकालमें जलकी धाराके नीचे

बैठते हैं और उष्ण कालमें बहुतसी अग्निसे तापते हैं इत्यादि और अनेक प्रकारकी काष्ठा करते हैं इसीको तितिक्षा कहते हैं या कुछ और ॥

उत्तर ॥ जो पुरुष शीतकालमें जलकी धाराके नीचे बैठते हैं इत्यादि और बहुतसी काष्ठा करते हैं ॥ वह पुरुष कुछ अपने उद्धारके वास्ते नहीं करते किन्तु ऋद्धि सिद्धिरूप बंधनमें फँसनेके वास्ते करते हैं क्यों कि जो पुरुष उद्धारके वास्ते करते हैं वह ऐसी तितिक्षा करते हैं ॥ कि जैसा कुछ स्वाभाविक सुखदुःख आय प्राप्त हो उसको सहारना और सच्छास्त्रका विचार करना और श्रीगुरुके चरणोंका ध्यान करना वह पुरुष ऐसी तितिक्षा करते हैं और वह पुरुष ऋद्धि सिद्धियोंको पैरकी ठोकरसे उडा देते हैं ॥ क्योंकि वह पुरुष जानते हैं कि परम पदका जो अधिकारी होता है उसको गिराकर दुःख देनेके वास्ते अनेक प्रकारकी उपाधि आय प्राप्त होती है तिसमें ॥ दृष्टांत ॥ जैसे किसी किलेके बीचमें बहुतसे घोडे बांधे रहे थे और कोई राजा उस

किलेको लूटकर घोडोंको मारनेके वास्ते आया ॥ उसने अपनी तोपें चलाना शुरू किया तब उन तोपोंको सुनकर घोडोंने विचार किया कि इस किलेसे निकल जाँयगे तौ बचेंगे नहीं तौ मारे जाँयगे तब उनमेंसे एक घोडा अगाडी पिछाडीको तोडकर दिवालको फाँदके और खाईको फांदकर किलेसे बाहर निकलके निर्भय सुखी हो गया और एक घोडेने अगाडी पिछाडीको तोडकर दिवालको फांदके खाईमें गिर पडा और एक घोडा अगाडी पिछाडीको तोड़कर दिवालके ऊपर आधा इधर आधा उधर टंगा रहा और एक घोडा अगाडी पिछाडीको तोडकर किलेमेंही घूमता रहा और एक घोडेने अगाडी तो तोड ली परंतु पिछाडी नहीं टूटी और बहुतसे घोडे कानोंको खडे कर करके सुनते तो रहे कि हमारा शत्रु हमारे मारनेको तोप चलाता है परंतु अगाडी पिछाडीको तोडकर किलेसे बाहर निकलनेको समर्थ नहीं हुए ॥ इसी प्रकार संसाररूप किलेमें पुरुषरूप घोडे बहुतसे बंध रहे हैं ॥ उनके मार-

नेको कालरूपी राजा तोप चलाता है ॥ अर्थात् दिखा-ता है कि जैसे और पुरुषोंको मारता हूं ऐसेही तुमको-भी मारूंगा कोई कोई पुरुष ऐसी तोपोंको सुनकर स्त्री पुत्र और जाति आश्रम रूप अगाडी पिछाडीको तोड-के विषयरूपी दिवालको फांदकर और ऋद्धि सिद्धि-रूप खाईको त्यागके निर्भय हो गये ॥ अर्थात् दुःख-रूप संसारसे निवृत्त होकर परमानंदस्वरूप अपने आ-त्माको प्राप्त हुए और कोई पुरुष जाति आश्रमरूप अगाडी पिछाडीको तोडके विषयरूपी दिवालको फां-दके ऋद्धि सिद्धिरूप खाईमें गिरकर मारे जाते हैं ॥ और कोई पुरुष जाति आश्रमरूप अगाडी पिछाडीको तोडकर विषयरूपी दिवालके ऊपर आधे इधर आधे उधर टंगकर मारे जाते हैं॥और कोई पुरुष जाति आश्र-मरूप अगाडी पिछाडीको तोडकर संसाररूप किलेहीमें देशान्तरोंके सैल करते २ मारे जाते हैं ॥ और किसी पुरु-षोंने स्त्री पुत्र ब्राह्मण शूद्र भावरूप अगाडी तो तोड दी परंतु संन्यासी ब्रह्मचारी और शिष्य सेवकभावरूप

पिछाडी नहीं टूटी वह इसी प्रकार बंधे बंधे मारे जाते हैं॥ और गृहस्थ लोग देखते तो हैं कि जैसे काल सब का ग्रास करता है॥ इसी प्रकार हमाराभी ग्रास करेगा॥ परंतु सर्व उपाधिको त्यागकर किलेसे निकलकरके निर्भय होनेका यत्न नहीं करते॥ इससे यह सिद्ध हुआ कि परमपदको पानेवाले पुरुष सर्व उपाधिको त्याग करते हैं॥ और जो पुरुष शीतकालमें जलधारा आदि अनेक प्रकारकी काष्ठा करते हैं॥ सो उद्धारके वास्ते नहीं करते किन्तु ऋद्धि सिद्धिरूप उपाधिमें फसनेके वास्ते करते हैं॥ और जो पुरुष अपने उद्धारके वास्ते करते हैं वह ऐसी तितिक्षा करते हैं कि स्वाभाविक जो कुछ सुख दुःख आय प्राप्त हो उसको सहारना॥ और सच्छास्त्रका विचार करना॥ और श्रीगुरुके चरणोंका ध्यान करना॥ वह पुरुष ऐसी तितिक्षा करते हैं॥ और यही तितिक्षा कल्याणकी करनेवाली है॥ इति तितिक्षा॥ १०॥

अथ श्रद्धावर्णन।

श्रद्धा कीदृशी। गुरुवेदांतवाक्यादिषु विश्वासः श्रद्धा॥ ११॥

टीका॥ प्रश्न॥ श्रद्धा किसको कहते हैं॥

उत्तर॥ गुरु और वेदान्त वाक्य इनको मोक्षका हेतु जानकर इनमें विश्वास करना॥ अर्थात् गुरु और वेदांत वाक्योंसेही दुःखरूप संसारकी निवृत्ति और परमानंदस्वरूप अपने आत्माकी प्राप्ति होती है॥ ऐसे विश्वासका नाम श्रद्धा है॥

शंका॥आपने प्रथम कहा है कि संसार मिथ्या है॥ और गुरु वेदांतवाक्यभी संसारमेंही हैं॥ इस वास्ते वहभी मिथ्या है॥ तो फिर गुरु वेदांतवाक्य मिथ्या होनेसे मिथ्या संसारकी निवृत्ति कैसे कर सकते हैं॥

उत्तर॥गुरु वेदांतवाक्य भलेही मिथ्या हो परंतु तिन्हीं वाक्योंकरके मिथ्या संसारकी निवृत्ति होती है॥ क्यों-कि जो पदार्थ आपसमें सब सत्तावाले होते हैं॥ वेही आपसमें साधक और बाधक होते हैं॥ सो सत्ता तीन प्रकारकी है॥ एक पारमार्थिक सत्ता, दूसरी व्यवहारिक

सत्ता है ॥ और तीसरी प्रातिभासिक सत्ता है ॥ और पारमार्थिक सत्ता तो चैतन्यमें है ॥ और चैतन्यसे भिन्न जो पदार्थ हैं तिनमें दो सत्ता हैं ॥ जिसका ब्रह्मज्ञानसेही नाश हो विना ब्रह्मज्ञानके न हो तिसमें व्यवहारिक सत्ता है ॥ और जिसका ब्रह्मज्ञानसे विनाही नाश हो जैसे रज्जुमें सर्प, शुक्तिमें रजत इत्यादि और जिनका विना-ही ब्रह्मज्ञानके नाश हो जैसे रज्जुके ज्ञानसे सर्पका नाश और सिप्पीके ज्ञानसे चांदीका नाश विनाही ब्रह्मज्ञानके है ॥ इस लिये इनमें प्रातिभासिकसत्ता है परंतु इनमें यह नेम है कि जो पदार्थ आपसमें समसत्तावाले होते हैं ॥ वही आपसमें साधक और बाधक होते हैं ॥ विषमसत्तावाले नहीं जैसे काष्ठ और अग्नि इन दोनोंकी आपसमें व्यवहा-रिक समसत्ता है॥इसलिये अग्नि काष्ठका बाधक है॥और जैसे मृत्तिका और घटकी आपसमें व्यवहारिक समसत्ता है॥इसलिये मृत्तिका घटका साधक है और जैसे मृगतृ-ष्णाके जलको देखकर प्यासा मृग भागता है॥ परंतु वह जल उस प्यासका बाधक नहीं ॥ क्योंकि उस प्यासकी तो व्यवहारिक सत्ता है और उस जलकी प्रातिभासिक

सत्ता है ॥ इसलिये विषम सत्ता होनेसे मृगतृष्णाका जल मृगकी प्यासका बाधक नहीं ॥ और जैसे कोई चक्रवर्त्ती राजा स्वप्नमें दरिद्री होकर घर घर भीक मांगनेको गया ॥ परंतु जहां जाय वहीं उसकी अप्रतिष्ठा हो ॥ अर्थात् सम्पूर्ण पुरुष उसका अपमान करने लगे उस अपमानको देखकर जब वह बहुत दुःखी हुआ तब ऐसा देखता है कि एक नगरका राजा मर गया था उस नगरमें यह नेम था कि जो कोई पुरुष प्रातःकाल शहरमें आवे उसको राज्य दिया जायगा ॥ उसी रोज वह राजा स्वप्नमें दरिद्री हुआ हुआ प्रातःकाल उस शहरमें चला गया तभी उसको राज्य प्राप्त हो गया ॥ उस राज्यके प्राप्त होतेही वह अप्रतिष्ठा करनेवाले पुरुष हाथ जोडकर सेवामें आय प्राप्त हुए अब देखिये कि सत्य चक्रवर्त्ती राज्य मिथ्या दरिद्रताका बाधक और मिथ्या प्रतिष्ठाका साधक नहीं हुआ और मिथ्याही राज्य मिथ्या दरिद्रताका बाधक और मिथ्या प्रतिष्ठाका साधक हुआ इससे यह सिद्ध हुआ कि मिथ्याहीसे

मिथ्याकी निवृत्ति होती है ॥ इसी प्रकार गुरु वेदांतवाक्य भलेही मिथ्या हो परंतु उनी वाक्यों करके मिथ्या संसारकी निवृत्ति होती है॥ इसलिये दुःखरूप संसारकी निवृत्ति करनेवाले जानकर गुरु वेदांतवाक्योंमें विश्वास करना इसको श्रद्धा कहते हैं ॥ ११ ॥

अथ समाधानवर्णन ।

समाधानं किम् । चित्तैकाग्रता ॥ १२ ॥

टीका ॥ प्रश्न ॥ समाधान किसको कहते हैं ॥

उत्तर ॥ चित्तको एकाग्र करना अर्थात् ॥ शम ॥ दम ॥ उपरम ॥ तितिक्षा ॥ श्रद्धा ॥ इन सब साधनोंको उद्धारका हेतु जानकर इनको धारण करना क्योंकि केवल सुनने सुनानेसे कल्याण नहीं होता जैसे कोई पुरुष निश्चय कर ले कि विषके खानेसे मृत्यु होती है ॥ और विषको लेकर अपने पासभी रख ले परंतु जबतक विषको नहीं खायगा तबतक कभी नहीं मरेगा ॥ इसी प्रकार भलेही सुन ले कि यह साधन मोक्षका हेतु है ॥ और सुनकर यादभी कर ले परंतु जबतक धारण

नहीं करेगा तबतक कल्याण नहीं होगा इसलिये इन शब्दोंको सुनकर धारण करना इसको समाधान कहते हैं ॥

शंका ॥ जैसे मलयागिरिके समीप रहनेवाले वृक्ष चाहे मलयागिरिकी सुगंधीको धारण करे चाहे नहीं करे परंतु वह सब वृक्ष चंदनरूप हो जाते हैं इसी प्रकार महात्माओंके समीप रहनेवाले पुरुष उनके वाक्योंको सुनकर धारण करे या नहीं करे परंतु वह सब महात्मा ही हो जाते हैं ॥

उत्तर ॥ मलयागिरिके समीप रहनेवाले वृक्ष सबही चंदन हो जाते हैं ॥ इसमें तो संदेह नहीं परंतु वाँसमें सुगंधी कभी नहीं होती क्योंकि उसमें तीन दोष हैं ॥ एक तौ बहुत लम्बा होता है ॥ दूसरे उसमें गांठें बहुतसी होती हैं ॥ तीसरे बीचमेंसे पोला होता है॥ इसलिये मलयागिरिके सत्संगका फल उसको नहीं प्राप्त होता ॥ इसी प्रकार महात्माओंके समीप रहनेवाले पुरुष सभी महात्मा हो जाते हैं॥परंतु वाँसकी तरह ती-

न दोष जिस पुरुषमें हैं तिसको सत्संगका फल नहीं प्राप्त होता ॥ एक तो अहंकार रूप लम्बाई है जिसमें ॥ और दूसरे कपटरूप गांठि जिसके हृदयमें है ॥ अर्थात् बाहिर कुछ और भीतर कुछ॥ तीसरे पोला है ॥ अर्थात् इस कानमें शब्द सुना और उस कानमें होकर निकाल दिया ॥ किन्तु धारण नहीं किया यह तीन दोष जिस पुरुषमें हैं ॥ तिस पुरुषको महात्माओंके सत्संगका फल नहीं प्राप्त होता क्योंकि सुनकर धारण तो करतेही नहीं तो फिर शांति कैसे हो ॥ जैसे कोई पुरुष जान ले कि मीठेके खानेसे मुंह मीठा होता है ॥ और मीठा मीठा कहताभी रहे ॥ परंतु जबतक मीठा नहीं खावेगा तब-तक मुंह मीठा नहीं होगा ॥ इसी प्रकार भलेही वेदांत-वाक्योंको सुनते सुनाते रहो ॥ परंतु जबतक यथावत् धारणा नहीं होगी तबतक कल्याण नहीं होगा ॥ इस-लिये वेदांतवाक्योंसे चित्तको एकाग्र करना इसको समाधान कहते हैं ॥ और शम दम उपरम ति-तिक्षा श्रद्धा समाधान ये षट्सम्पत्ति ज्ञानका तीसरा साधन है॥ १२ ॥

अथ मुमुक्षुतावर्णन ।

मुमुक्षुत्वं किम् । मोक्षो मे भूयादितीच्छा ॥ १३ ॥

टीका ॥प्रश्न॥ मुमुक्षुता किसको कहते हैं सो कहो ॥ उत्तर ॥ मेरी मोक्ष हो ऐसी इच्छाका नाम मुमुक्षुता है ॥

प्रश्न ॥ मोक्षका क्या स्वरूप है सो कहो ॥

उत्तर ॥ कारणसहित संसारकी निवृत्ति और परमानंदकी प्राप्ति मोक्षका स्वरूप है ॥

शंका ॥ कारणसहित संसारकी निवृत्ति तौ अभावरूप है और परमानंदकी प्राप्ति भावरूप है ॥ तौ फिर भावरूपता और अभावरूपता एक मोक्ष विषे कैसे बन सक्ती है ॥

उत्तर ॥ जैसे एक रज्जू विषै सर्पकी निवृत्ति तौ अभावरूप है ॥ और रज्जूका ज्ञान भावरूप है ॥ जिस प्रकार यह दोनों भावरूपता और अभावरूपता एक रज्जू विषै बनती हैं ॥ इसी प्रकार कारणसहित संसार-

की निवृत्ति अभावरूप और परमानंदकी प्राप्ति भावरूप एक मोक्ष विषै बनती है ॥ और वास्तवमें तौ अभावरूपता भावरूपही है ॥ क्योंकि चाहे तो सर्पकी निवृत्ति कहो और चाहे रज्जूका ज्ञान कहो और चाहे दोनोंही कहो ॥ इन सबका तात्पर्य एकही है ॥ इसी प्रकार चाहे कारणसहित संसारकी निवृत्ति कहो और चाहे परमानंदकी प्राप्ति कहो ॥ चाहे दोनोंही कहो इन सबका तात्पर्य्य एक मोक्ष विषै है ॥ इसलिये कारणसहित संसारकी निवृत्ति और परमानंदकी प्राप्ति मोक्षका स्वरूप है और इसकी इच्छाका नाम मुमुक्षुता है ॥

शंका ॥ मोक्षकी किसी पुरुषकोभी इच्छा नहीं क्योंकि प्रथम तो कारणसहित संसारकी निवृत्तिहीको कोई पुरुष नहीं चाहता ॥ किन्तु कोई कोई पुरुष ॥ अध्यात्म[1] ॥ अधिभूत[2] ॥ अधिदैव[3] ॥ इन तीन दुःखोंकी

---

१ क्षुधा पिपासा रोगादिकोंसे जो दुःख होता है ॥ २ व्याघ्र सर्पादि करके जो दुःख होता है ॥ ३ यक्ष राक्षस प्रेतादि करके जो दुःख होता है ॥

निवृत्ति चाहते हैं सो औषधी आदिकोंसे हो सक्ती है ॥ परंतु कारणसहित संसारकी निवृत्तिकी किसी पुरुषकोभी इच्छा नहीं और दूसरे परमानंदकी प्राप्तिकी किसी पुरुषको इच्छा नहीं क्योंकि जिस वस्तुका प्रथम अनुभव ज्ञान होता है उस वस्तुकी इच्छा होती है ॥ और परमानंदका तौ प्रथम अनुभवज्ञान हैही नहीं किसी पुरुषकोभी ॥ इसलिये परमानंदकी प्राप्तिकी किसी पुरुषको इच्छा नहीं ॥ किन्तु सर्वपुरुष विषय सुखको चाहते हैं ॥ परमसुखको कोई पुरुष नहीं चाहता ॥ इस वास्ते कारणसहित संसारकी निवृत्ति और परमानंदकी प्राप्तिरूप मोक्षकी किसी पुरुषको इच्छा नहीं ॥

उत्तर ॥ तुमने जो कहा कि कारणसहित संसारकी निवृत्तिकी किसी पुरुषको इच्छा नहीं किन्तु कोई कोई पुरुष ॥ अध्यात्मादि दुःखोंका नाश चाहते हैं ॥ सो औषधीआदिकोंसे निवृत्त हो सक्ते हैं ॥ ऐसा कहना बनता नहीं क्योंकि बहुतसे दुःख ऐसे असाध्य हैं कि जो औषधियोंसेभी निवृत्त नहीं होते ॥ और जो निवृ-

त्त हो जाते हैं ॥ वह कुछकाल पीछे फिरभी उत्पन्न हो जाते हैं और सब पुरुष ऐसा चाहते हैं कि हमारा दुःख ऐसा निवृत्त होवे कि जो फिर कभी उत्पन्न नहीं हो॥ अर्थात् अत्यंत निवृत्ति दुःखोंकी चाहते हैं ॥ परंतु दुःखोंकी अत्यन्त निवृत्ति तौ तभी होगी कि जब कारणसहित संसारकी निवृत्ति होगी क्योंकि सर्व दुःखोंका मूल कारणसहित संसार है ॥ इसलिये कारणसहित संसारकी निवृत्तिकी सर्व पुरुषोंको इच्छा है ॥ और दूसरे जो तुमने कहा कि सर्व पुरुषोंको विषयसुखकी इच्छा है ॥ परम सुखकी नहीं ऐसा कहनाभी बनता नहीं ॥ क्योंकि सर्व पुरुष विषयसुखको तौ चाहते हैं ॥ परंतु ऐसा चाहते हैं कि ये हमारे सुख भोग कभी नाश नहीं हों ॥ अर्थात् अविनाशी सुखको चाहते हैं ॥ और अविनाशी सुख तौ परमानंदही है ॥ किन्तु विषयसुख तौ सब नाशवान् है इसवास्ते अविनाशी सुख जो परमानन्द तिसकी प्राप्तिकी सब पुरुषोंको इच्छा है ॥ इससे यह सिद्ध हुआ कि कारणसहित संसारकी निवृत्ति और

परमानंदकी प्राप्तिरूप मोक्षकी सर्व पुरुषोंको इच्छा है॥ और मोक्षकी इच्छाहीका नाम मुमुक्षुता है ॥ यह चौथा साधन है ॥ और प्रथम विवेक ॥ दूसरे विराग ॥ तीसरे शमादिषट्क सम्पत्ति ॥ चौथे मुमुक्षुता ॥ ये चार साधन ज्ञानके हैं ॥ १३ ॥

अथ तत्त्वविवेकका अधिकारिवर्णन ।

एतत्साधनचतुष्टयम् । ततस्तत्त्वविवेकस्याधिकारिणो भवंति ॥ १४ ॥

टीका ॥ ये चार साधन हैं ॥ इन चार साधनोंके अनंतर अर्थात् ॥ साधनोंकरके अन्तःकरण शुद्ध होनेसे पश्चात् जिज्ञासु तत्त्वविवेकका अधिकारी होता है ॥

प्रश्न ॥ अन्तःकरणमें कौन कौनसे दोष हैं ॥ और तिन दोषोंकी निवृत्ति कौन कौनसे साधनोंसे होती है सो कहो ॥

उत्तर ॥ अन्तःकरणमें तीन दोष हैं ॥ प्रथम तो मल अर्थात् पाप ॥ दूसरे विक्षेप अर्थात् चंचलता ॥ तीसरे आवरण अर्थात् स्वस्वरूपका अज्ञान ॥ यह

मल विक्षेप आवरण तीन दोष हैं ॥ इन तीनों दोषोंकी निवृत्तिके वास्ते तीन साधन हैं ॥ कर्म ॥ उपासना ॥ ज्ञान ॥ इन तीन साधनोंसे तीनों दोषोंकी निवृत्ति होती है ॥ अर्थात् निष्काम कर्म करनेसे मल अर्थात् पापदोषकी निवृत्ति होती है ॥ और सो कर्म चार प्रकारके हैं॥ एक नित्य कर्म॥ दूसरे नैमित्तिक कर्म ॥ तीसरे काम्य कर्म ॥ चौथे प्रायश्चित्त कर्म ॥ और जिसके करनेसे तो पुण्य नहीं होय और नहीं करनेसे पाप हो तिसको नित्य कर्म कहते हैं ॥ जैसे शौच स्नान संध्या आदिक और जो किसी व्यवहारिक निमित्तको लेकर किया जाय तिसको नैमित्तिक कर्म कहते हैं ॥ और जो स्वर्गादि भोगोंके वास्ते किये जाते हैं सो काम्य कर्म हैं ॥ और जो अन्तःकरणकी शुद्धिके वास्ते किये जाते हैं ॥ सो प्रायश्चित्त कर्म हैं ॥ ये चार प्रकारके कर्म हैं ॥ इन चार प्रकारके कर्मोंमेंसे नैमित्तिक कर्म तो करने योग्यही नहीं किसलिये कि जिस कार्य्यके निमित्तको लेकर कर्म किये जाते हैं॥ उस कर्मकी सिद्धि वा असिद्धि

तौ प्रारब्धानुसार है ॥ क्योंकि बहुतसे पुरुष स्त्री पुत्र धन आदिकोंके वास्ते अनेक यत्न करते हैं ॥ परंतु स्त्री पुत्रादिकी प्राप्ति नहीं होती तौ फिर उनके निमित्त कर्म किये जाँय तौ अत्यंत मूर्खता है ॥ और काम्यकर्मभी करने योग्य नहीं हैं ॥ क्योंकि जिन स्वर्गभोगोंके वास्ते कर्म किये जाते हैं ॥ सो स्वर्गभोग मिथ्या और दुःखरूप हैं ॥ और दुःखको कोई पुरुप चाहता नहीं इसलिये काम्य कर्मोंका करनाभी निष्फल है ॥ और नित्यकर्म तौ अवश्य करनाही होगा क्योंकि संध्यादिक कर्म नहीं किये जांयगे तौ पाप होगा ॥ और जो प्रायश्चित्त कर्म है सो अवश्य करने योग्य हैं ॥ परंतु निष्काम किये जांयगे तौ अन्तःकरणकी शुद्धिका हेतु होगा और सकाम किये जांयगे तौ अन्तःकरणकी शुद्धिका हेतु नहीं होगा इसवास्ते निष्काम कर्मोंसे मल अर्थात् पापदोषकी निवृत्ति होती है ॥ और शुद्ध सच्चिदानंद सर्वान्तर्यामिरूप जो श्रीगुरु हैं ॥ तिनके चरणकमलोंके ध्यानको उपासना कहते हैं ॥ तिस उपासनासे विक्षेप

अर्थात् चंचलताकी निवृत्ति होती है ॥ और ज्ञानसे आवरणकी निवृत्ति होती है ॥ इस प्रकार साधनोंसे अन्तःकरण शुद्ध होता है ॥ सो साधन दो प्रकारके हैं ॥ एक तो बहिरंग ॥ दूसरे अन्तरंग ॥ जिस करके अन्तःकरण शुद्ध तो होय परंतु चिरकालमें होय तिसको बहिरंग साधन कहते हैं ॥ और जिस करके बहुत शीघ्र अन्तःकरण शुद्ध हो तिसको अन्तरंग साधन कहते हैं॥ और कर्म उपासनासे अन्तःकरण शुद्ध तो होता है ॥ परंतु बहुत रोजमें होता है ॥ इसलिये कर्म उपासना बहिरंग साधन है ॥ और विवेकादिक साधन अन्तरंग है ॥ क्योंकि उन करके अन्तःकरण बहुत शीघ्र शुद्ध होता है ॥ इसवास्ते विवेकादिक साधन अन्तरंग हैं ॥ और विवेकादिक साधनोंकी अपेक्षासे ॥ श्रवण ॥ मनन ॥ निदिध्यासन ॥ और तत्त्वंपद शोधन अर्थात् साक्षात्कार ॥ ये चार साधन अन्तरंग हैं ॥ क्योंकि इनसे अन्तःकरण बहुत शीघ्र शुद्ध होता है ॥ किसलिये कि प्रथम तो अहंकारको त्यागकर श्रीगुरुके चरणोंमें जाके

उनके श्रीमुखसे वेदशास्त्रको श्रवण करना वा पढना इसको श्रवण कहते हैं ॥ और दूसरे सर्व उपाधिको त्यागकर एकान्तमें स्थित होके उन वाक्योंको विचारना इसको मनन कहते हैं ॥ और उनको विचारके धारण करना इसको निदिध्यासन कहते हैं ॥ और तत्त्वमसि आदि महावाक्योंसे जीवब्रह्मकी एकताका निश्चय करना इसको तत्त्वंपद शोधन अर्थात् साक्षात्कार कहते हैं ॥ इन श्रवणादिक साधनोंसे अन्तःकरण बहुत शीघ्र शुद्ध होता है ॥ इसवास्ते ये साधन अन्तरंग हैं ॥ इस प्रकार साधनों करके अन्तःकरण शुद्ध होनेके पश्चात् जिज्ञासु तत्त्वविवेकका अधिकारी होता है ॥१४॥

तत्त्वविवेकः कः । आत्मा सत्यस्तदन्यत् सर्वं मिथ्येति ॥ १५ ॥

टीका ॥ प्रश्न ॥ तत्त्वविवेक किसको कहते हैं ॥

उत्तर ॥ एक आत्माही सत्य है और तिससे अन्य जो कुछ दृश्य प्रपंच अर्थात् संसार है सो सब मृगतृष्णाके जलकी नाईं मिथ्या है ॥ और जो कोई पुरुष

उसको सत्य जानकर ग्रहण किया चाहता है सो उस पुरुषको मृगकी नाईं प्राप्तभी नहीं होता और वह पुरुष महादुःख पाता है इसवास्ते इस संसारको मिथ्या और एक आत्माको सत्य जानना इसको तत्त्वविवेक कहते हैं ॥ १९ ॥

अथ आत्मासाक्षिरूपवर्णन।

आत्मा कः। स्थूलसूक्ष्मकारणशरीराद्व्यतिरिक्तः पंचकोशातीतः सन् अवस्थात्रयसाक्षी सच्चिदानंदस्वरूपः सन् यस्तिष्ठति स आत्मा ॥१६॥

टीका ॥ प्रश्न ॥ आत्मा किसको कहते हैं ॥

उत्तर ॥ स्थूल सूक्ष्म कारण इन तीनों शरीरोंसे भिन्न और पंच कोशोंसे भिन्न और तीनों अवस्थाओंका साक्षी सच्चिदानंदस्वरूप सबको प्रकाश करनेवाला और सबसे न्यारा ॥ जैसे सूर्य्य सबको प्रकाश करता है और सबसे न्यारा है ॥ और जैसे सूर्यके प्रकाशको

लेकर सब पुरुष अपनी अपनी क्रियाओंके करनेमें और सुखदुःखके भोगनेमें प्रवृत्त होते हैं ॥ परंतु सूर्यमें कर्तृत्व भोक्तृत्व धर्म नहीं हैं ॥ इसी प्रकार आत्माकी सत्ताको लेकर देहेंद्रिय आदिक कर्मोंके करनेमें और सुखदुःखके भोगनेमें प्रवृत्त होते हैं ॥ परंतु आत्मामें कर्तृत्व भोक्तृत्व धर्म नहीं किन्तु आत्मा शुद्ध है ॥ सबको प्रकाश करनेवाला और सबसे न्यारा ऐसा जो है सो आत्मा है ॥ १६ ॥

अथ स्थूलशरीरवर्णन।

स्थूलशरीरं किम्। पंचीकृतपंचमहाभूतैः कृतं सत्कर्मजन्यं सुखदुःखादिभोगायतनं शरीरम् अस्ति जायते वर्धते विपरिणमते अपक्षीयते विनश्यतीति षड्विकारवदेतत्स्थूलशरीरम् ॥ १७ ॥

टीका ॥ प्रश्न ॥ स्थूल शरीर किसको कहते हैं ॥ उत्तर ॥ पंचीकृत जो पंचमहाभूत हैं अर्थात् पंची-

करण हुआ है॥जिन पंचमहाभूतोंका तिन करके किया हुआ और सत्कर्मों करके उत्पन्न हुआ हुआ अर्थात् मनुष्य स्थूलशरीर बडे पुण्योंका फल है ॥ क्योंकि यह मनुष्यशरीर मोक्षका द्वार है ॥ और ऐसे मोक्षके द्वार-को अशुभ कर्मोंमे प्रवृत्त करना पत्थरको हीरेसे तोलना है ॥ और फिर कैसा है स्थूलशरीर कि सुखदुःखादि जो भोग हैं ॥ तिनके रहनेका स्थान अर्थात् जिसमें स्थित होकर मन सुखदुःखोंको भोक्ता है ॥ और छैः विकार हैं जिसमें ॥ अस्ति अर्थात् है ॥ जायते जन्मता है ॥ वर्द्धते बढता है ॥ विपरिणमते युवा अव-स्थाको प्राप्त होता है ॥ अपक्षीयते वृद्ध अवस्थाको प्राप्त होता है ॥ विनश्यति नाशको प्राप्त होता है ॥ ये छैः विकार हैं जिसमें तिसको स्थूल शरीर कहते हैं ॥

शंका ॥ आपने जो कहा कि स्थूल शरीरमें स्थित होकर मन सुखदुःखोंका भोक्ता है ऐसा कहना बनता नहीं क्योंकि मन अविद्याका कार्य होनेसे जड है ॥ इस

लिये यह सुखदुःखोंके भोगनेमें समर्थ नहीं और दूसरे जैसे नेत्रोंके जो वस्तु अत्यन्त समीप होती है तिसको नेत्र विषय करते नहीं और जो वस्तु नेत्रोंके थोडी दूर होती है तिसको नेत्र विषय करते हैं॥ क्योंकि जैसे अंजन नेत्रोंके अत्यन्त समीप है ॥ इसलिये नेत्र अपने बीचके अंजनको नहीं देख सक्के ॥ इसी प्रकार सुखदुःख मनके अत्यन्त समीप हैं ॥ इसलिये सुखदुःखको मन नहीं विषय करता ॥ किन्तु साक्षी जो जीवआत्मा है ॥ सोई सुखदुःखोंको विषय करता है ॥ अर्थात् मन नहीं सुखदुःखोंको भोक्ता ॥ किन्तु जीवात्माही भोक्ता है ॥

उत्तर ॥ जिस प्रकार तीन अवस्था है ॥ जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति अवस्था इसी प्रकार जीवकी तीन संज्ञा हैं ॥ विश्व तैजस प्राज्ञ जाग्रत्में विश्व और स्वप्नमें तैजस और सुषुप्तिमें प्राज्ञ नाम करके जीवआत्मा है॥ जिसकर सुखदुःखका भोक्ता जीवात्मा हो तो सुषुप्तिमेंभी सुखदुःखकी प्रतीति होनी चाहिये सो होती नहीं ॥ क्योंकि

मन अपना कारण जो अविद्या तिसमें लय हो जाता है॥ अर्थात् तमरूप निद्रा करके आच्छादित हो जाता है॥ इसलिये सुषुप्तिमें सुखदुःखकी प्रतीति नहीं होती॥ इससे यह सिद्ध हुआ कि मनही सुखदुःखका भोक्ता है जीवात्मा नहीं॥ केवल इतनाही है कि जैसे किसी पात्रमें जल भरा हुआ हो और तिस जलमें सूर्यका आभास हो जैसे वायुके सम्बंधसे जल हिलता है॥ और उस जलके हिलनेसे आभास हिलता प्रतीत होता है॥ वास्तव आभास अचल है॥ इसी प्रकार स्थूल शरीररूप पात्रमें सूक्ष्मशरीर अर्थात् मनरूप जल है तिस जलमें ब्रह्मरूप सूर्यका जीवरूप आभास है॥ और सुखदुःखरूपी वायु तो मनको लगती है॥ परंतु मनके सम्बंधसे भ्रम करके जीवात्मामें प्रतीत होते हैं॥ और वास्तव जीव शुद्ध है॥ किन्तु मनही सुखदुःखको भोगता है॥ और जिसमें स्थित होकर मन सुखदुःखोंको भोगता है तिसको स्थूल शरीर कहते हैं॥ १७॥

अथ सूक्ष्मशरीरवर्णन ।

सूक्ष्मशरीरं किम् । अपंचीकृतपंचमहाभूतैः कृतं सत्कर्मजन्यं सुखदुःखादिभोगसाधनं पंच ज्ञानेन्द्रियाणि पंच कर्मेन्द्रियाणि पंच प्राणादयः मनश्चैकं बुद्धिश्चैका एवं सप्तदशकलाभिः सह यत्तिष्ठति तत्सूक्ष्मशरीरम् ॥ १८ ॥

टीका ॥ प्रश्न ॥ सूक्ष्म शरीर किसको कहते हैं ॥ उत्तर ॥ अपंचीकृत जो पंच महाभूत हैं ॥ अर्थात् पंचीकरण नहीं हुआ है जिनका तिन करके किया हुआ और सत्कर्म्मों करके किया हुआ ॥ और सुखदुःखादि भोगोंका साधन ॥ और नेत्रसे आदि लेकर पंच ज्ञानइन्द्रियें हैं ॥ जिसमें और वाक्यसे आदि लेकर पंच कर्मइन्द्रियें हैं ॥ जिसमें और पंच प्राण हैं ॥ जिसमें और एक मन और एक बुद्धि इन सतरह कलाओंको सूक्ष्म शरीर कहते हैं ॥ और इन सतरहोंमेंसे बुद्धिहीमें

चैतन्यका आभास प्रतीत होता है ॥ और किसीमें नहीं प्रतीत होता क्योंकि जैसे सम्पूर्ण पदार्थ जड और अविद्याका कार्य हैं ॥ और सबमें सूर्यका आभास पडता है ॥ परंतु दर्पण आदि स्वच्छ पदार्थोंमें सूर्यके आभासकी प्रतीति होती है ॥ और किसी पदार्थमें नहीं॥ इसी प्रकार चैतन्यका आभास सम्पूर्ण पदार्थोंमें पडता है ॥ परंतु सम्पूर्णमें प्रतीत नहीं होता ॥ केवल बुद्धिहीमें प्रतीत होता है ॥ क्योंकि बुद्धि स्वच्छ है ॥१८॥

अथ पंचज्ञानेंद्रियवर्णन ।

श्रोत्रं त्वक् चक्षुः रसना घ्राणं इति पंच ज्ञानेन्द्रियाणि। श्रोत्रस्य दिग्देवता, त्वचो वायुः, चक्षुषः सूर्यः, रसनाया वरुणः, घ्राणस्य अश्विनौ इति ज्ञानेन्द्रियदेवताः । श्रोत्रस्य विषयः शब्दग्रहणम्, त्वचो विषयः स्पर्शग्रहणम्, चक्षुषो विषयः रूपग्रहणम्, रसनाया विषयः रसग्रहणम्, घ्राणस्य विषयो गंधग्रहणम् इति ॥ १९ ॥

टीका ॥ प्रश्न ॥ पंचज्ञानेन्द्रियें कौनसी हैं ॥ और क्या उनका स्वभाव है सो कहो ॥

उत्तर ॥ श्रोत्र त्वचा चक्षु रसना घ्राण ये पांच ज्ञानेन्द्रियें हैं ॥ श्रोत्रका देवता दश दिशा हैं और त्वचाका देवता वायु है और चक्षुओंका देवता सूर्य्य है और रसनाका देवता वरुण है और नासिकाका देवता अश्विनीकुमार हैं ॥ ये पांच ज्ञानेन्द्रियोंके देवता हैं ॥ और श्रोत्रका विषय शब्द है और शब्दका ग्रहण करना यह श्रोत्रका स्वभाव है और त्वचाका विषय स्पर्श है और स्पर्श अर्थात् सरदी गरमी और चिकने खरखरेका ग्रहण करना यह त्वचाका स्वभाव है और नेत्रका विषय रूप है और रूपका ग्रहण करना नेत्रोंका स्वभाव है और रसनाका विषय रस है और रसका ग्रहण करना रसनाका स्वभाव है और नासिकाका विषय गंध है और गंधका ग्रहण करना नासिकाका स्वभाव है॥ ये पांच ज्ञानेन्द्रियें अपने अपने विषयोंको ग्रहण तो करती हैं ॥ परंतु अपने अपने देवताओंके सहित विषयोंको

ग्रहण करती हैं ॥ किन्तु विना देवताके नहीं ग्रहण कर सक्तीं ॥ १९ ॥

अथ कर्मेंद्रियवर्णन।

वाक्पाणिपादपायूपस्थानीति पंच कर्मेन्द्रियाणि। वाचो देवता वह्निः, हस्तयोरिंद्रः, पादयोर्विष्णुः, पायोर्मृत्युः, उपस्थस्य प्रजापतिः इति कर्मेन्द्रियदेवताः। वाचो विषयः भाषणम्, पाण्योर्विषयः वस्तुग्रहणम्, पादयोर्विषयः गमनम्, पायोर्विषयः मलत्यागः, उपस्थस्य विषयः आनंद इति ॥ २० ॥

टीका ॥ प्रश्न ॥ पांच कर्मेन्द्रियें कौनसी हैं ॥ और क्या उनका स्वभाव है ॥

उत्तर ॥ वाक् पाणि पाद पायु उपस्थ ये पांच कर्मेंद्रियें हैं ॥ और वाक्का देवता अग्नि है और पाणि अर्थात् हाथोंका देवता इन्द्र है और पाओंका देवता

विष्णु है और गुदाका देवता मृत्यु है और लिंगका देवता प्रजापति है॥ और वाणीका विषय शब्द है॥और शब्दका उच्चारण करना वाणीका स्वभाव है और हाथोंका विषय वस्तु है॥ वस्तुका ग्रहण त्याग करना हाथोंका स्वभाव है और पाओंका विषय मार्ग है मार्गका चलना पाओं-का स्वभाव है और गुदाका विषय मल है॥ मलका त्याग करना गुदाका स्वभाव है॥ और लिंगका विषय विषयानंद है॥ और विषयानंदका ग्रहण करना लिंग-का स्वभाव है॥ ये पांच कर्मेन्द्रियें अपने अपने देवता-ओंके सहित विषयोंको ग्रहण करती हैं॥ किन्तु विना देवताओंके विषयोंको नहीं ग्रहण कर सक्तीं॥ २०॥

अथ कारणशरीरवर्णन॥

कारणशरीरं किम्।अनिर्वाच्यानाद्यवि-द्यारूपं शरीरद्वयस्य कारणमात्रं सत् स्वस्वरूपाऽज्ञानं निर्विकल्पकरूपं यद-स्ति तत्कारणशरीरम्॥ २१॥

टीका॥ प्रश्न॥ कारण शरीर किसको कहते हैं॥

उत्तर ॥ अनिर्वचनीय अर्थात् सत् असत्से विलक्षण क्योंकि सत् कहेंगे तो ज्ञानसे मायाका नाश नहीं होगा और जो असत् कहें तो उसका कार्य्य जो संसार है सो प्रत्यक्ष देखनेमें आता है ॥ इसलिये न सत् कह सक्ते हैं ॥ और न असत् कह सक्ते हैं ॥ अर्थात् सत् असत्से विलक्षण होनेसे अनिर्वचनीय है और अनिर्वचनीय शब्दका वास्तव तात्पर्य्य कारणसहित संसारके अत्यन्ताभाव विषय है ॥ क्योंकि जो सत्भी नहीं और असत्भी नहीं तो क्या है अर्थात् कुछ नहीं और मेरा यह कथनभी कुछ नहीं ॥ अर्थात् केवल चैतन्यका विलास है ॥ और वास्तव कथन श्रवण कुछ बनता नहीं इसलिये अनिर्वचनीय है और फिर कैसी है माया कि अनादि अर्थात् जिनको कारणकी अपेक्षा नहीं क्योंकि जो स्वपरका साधक होता है व दूसरेकी इच्छासे रहित होता है ॥ जैसे दीपक स्वपर दोनोंका साधक है ॥ इस वास्ते वह दूसरे दीपककी इच्छासे रहित है ॥ अर्थात् अपने प्रकाश करके अपने स्वरूपकाभी बोध करता

है ॥ और अन्य पदार्थोंकाभी बोध कराता है ॥ इस-वास्ते उस दीपकके देखनेको दूसरे दीपककी इच्छा नहीं और जो उसके देखनेको दूसरा दीपक लाओगे तौ उस दीपकके देखनेको और दीपक लाना पडेगा॥ और फिर उस दीपकके देखनेको और दीपक लाना पडेगा इस प्रकार चक्रदोष आनेसे कार्य्य सिद्ध नहीं होगा ॥ और इसी प्रकार माया स्वपरका साधक है ॥ क्योंकि अपनेही करके अपनाभी बोध कराती है ॥ कि मैं माया हूं ॥ और अपनेही करके अपना जो कार्य्य संसार तिसका बोध कराती है ॥ इसवास्ते मायाको कारणकी अपेक्षा नहीं और जो इसका कोई कारण मानोगे तौ उसका कोई और कारण मानना पडेगा और फिर उसका कोई और कारण मानना पडेगा इस प्रकार चक्रदोष आनेसे कार्य्य सिद्ध नहीं होगा इसलिये माया अनादि है और फिर कैसी है कि जिसको अना-दि कहनेसेभी कारणसहित संसारके अत्यन्ताभाव विषै तात्पर्य्य है ॥ क्योंकि अनादि शब्दका यह अर्थ

है जिसका आदि नहीं और जिसका आदि नहीं तो फिर उसका अन्तभी नहीं और जो आदि अन्त दोनों नहीं तो फिर मध्यमें क्या है ॥ अर्थात् कुछ नहीं इस प्रकार अनादि शब्दकाभी तात्पर्य कारणसहित संसारके अत्यन्ताभाव विषय है इसलिये अनादि है और फिर कैसी है कि अविद्यारूप अर्थात् ब्रह्मविद्यासे निवृत्ति होनेवाली और दोनों शरीरोंका कारणमात्र और स्वस्वरूपका अज्ञान अर्थात् शुद्ध सच्चिदानंदस्वरूप अपने आत्मस्वरूपको भूलाकर जीवभावको प्राप्त करनेवाली और कल्पनासे रहित अर्थात् तमरूप निद्रा ऐसी जो है ॥ तिसको कारणशरीर कहते हैं ॥ और वास्तव स्वरूप इसका एकही है॥परंतु अनिर्वचनीय होनेसे इसका नाम माया है ॥ और इसका उत्पन्न करनेवाला कोई नहीं इसवास्ते इसको अनादि शक्ति कहते हैं ॥ और ब्रह्मविद्यासे निवृत्त होती है ॥ इसवास्ते इसका नाम अविद्या है ॥ और सम्पूर्ण संसार इससे उत्पन्न होता है इसवास्ते इसका नाम कारण है और स्वस्वरूपको आच्छादित

करती है ॥ इसवास्ते इसका नाम अज्ञान है ॥ और सत् असत्के विचारसे रहित है इसवास्ते इसको तमरूप निद्रा कहते हैं ॥ और ये सब नाम मायाहीके हैं ॥ परंतु वास्तव स्वरूप इसका एकही है ॥ इति कारणशरीरम् ॥ अब ये तीन शरीर समाप्त हुये ॥ और अब तीन अवस्थाओंको कहता हूं ॥ २१ ॥

अथ तीनअवस्थावर्णन।

अवस्थात्रयं किम् । जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यवस्थाः ॥ २२ ॥

टीका ॥ प्रश्न ॥ अवस्था तीन कौनसी हैं सो कहो ॥ उत्तर ॥ जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति ये तीन अवस्था हैं ॥ और इन तीनों अवस्थाओंका साक्षी शुद्ध चैतन्य चतुर्थ अवस्था तुर्यरूप है ॥ ये तीन अवस्था हैं ॥२२॥

अथ जाग्रदवस्थावर्णन।

जाग्रदवस्था का । श्रोत्रादिज्ञानेंद्रियैः शब्दादिविषयैश्च ज्ञायते इति यत् सा

जाग्रदवस्था । स्थूलशरीराभिमानी आत्मा विश्व इत्युच्यते ॥ २३ ॥

टीका ॥ प्रश्न ॥ जाग्रत् अवस्था कौनसी है ॥

उत्तर ॥ श्रवणसे आदि लेकर जो पांच ज्ञानेंद्रियें हैं॥ अर्थात् श्रोत्र त्वक् चक्षु रसना घ्राण इन पांच ज्ञानेंद्रियों करके शब्दादि जो विषय हैं ॥ अर्थात् शब्द स्पर्श रूप रस गंध इन विषयोंको इन्द्रिय ग्रहण करे अर्थात् कानों करके सुना जाय और नेत्रों करके देखा जाय इत्यादि और सब इन्द्रियें अपने अपने विषयोंको जिस समय ग्रहण करें उसको जाग्रत अवस्था कहते हैं ॥ और तिस जाग्रत् अवस्थामें स्थूल शरीर है ॥ और तिस स्थूल शरीरव्यष्टिका अभिमानी जीवात्मा विश्व नाम करके है ॥ और वही आत्मा जाग्रत् अवस्था स्थूल शरीर समष्टिका अभिमानी होनेसे ईश्वर आत्मा है विराट् है नाम जिसका ॥ इसको जाग्रत अवस्था कहते हैं ॥ इस जाग्रत्में मनका नेत्रोंमें स्थान है ॥ २३ ॥

अथ स्वप्नावस्थावर्णन।

स्वप्नावस्था केति चेत्। जाग्रदवस्थायां यत् दृष्टं यच्छ्रुतं तज्जनितवासनया निद्रासमये यः प्रपंचः प्रतीयते सा स्वप्नावस्था। सूक्ष्मशरीराभिमानी आत्मा तैजस इत्युच्यते ॥ २४ ॥

टीका ॥ प्रश्न ॥ स्वप्न अवस्था कौनसी है ॥ तिसको कहो ॥

उत्तर ॥ जाग्रत् अवस्थामें जो देखी और जो सुनी वस्तु तिससे उत्पन्न हुई जो वासना सो वासना संस्काररूप होकर अन्तःकरणमें स्थित रहती है॥ और तिस वासना करके निद्रासमय विषे जो प्रपंच प्रतीत हो तिसको स्वप्नावस्था कहते हैं॥ और तिसमें सूक्ष्म शरीर है तिस सूक्ष्म शरीर व्यष्टिका अभिमानी जीवात्मा है॥ तैजस है नाम जिसका ॥ और वही आत्मा सूक्ष्म शरीर स्वप्न अवस्था समष्टि अभिमानी होनेसे ईश्वर

आत्मा है जिसका और हिरण्यगर्भ है नाम जिसका ॥ और तिसको स्वप्नअवस्था कहते हैं ॥ उसमें मनका कंठमें स्थान है ॥ इति स्वप्नअवस्था ॥

शंका ॥ आपने जो कहा कि जाग्रत् अवस्थामें देखी और सुनी जो वस्तु तिसकी स्वप्नमें प्रतीति होती है ॥ ऐसा कहना बनता नहीं क्योंकि बहुतसे पदार्थ ऐसे हैं कि जो हमने जाग्रत् अवस्थामें देखे सुनेभी नहीं परंतु उनकी स्वप्नमें प्रतीति होती है ॥ जैसे हमनें अपना शिर कटा हुआ कभी नहीं देखा ॥ और नहीं कभी सुना ॥ तौ फिर हमको स्वप्नमें ऐसा क्यों प्रतीत होता है ॥ कि हमारा शिर कटा हुआ है ॥ और जाग्रत्में हम कभी उडेभी नहीं परंतु हम स्वप्नमें ऐसा देखते हैं कि हम उडे जाते हैं ॥ इससे यह सिद्ध हुआ कि ऐसा नेम नहीं है ॥ कि जाग्रत् अवस्थामें देखे सुने पदार्थोंकाही स्वप्न हो ॥ किन्तु विना देखे सुनें पदार्थोंकीभी स्वप्नमें प्रतीति होती है ॥

उत्तर ॥ ऐसा नेम नहीं हो सक्ता कि इसी जन्मके

देखे सुने पदार्थोंकी स्वप्नमें प्रतीति हो ॥ किन्तु पूर्वजन्मके देखे सुने पदार्थोंकाभी अन्तःकरणमें संस्कार बना रहता है ॥ और उसी संस्कार करके उन पदार्थोंकी स्वप्नमें प्रतीति होती है ॥ इसी प्रकार तुमने पूर्वजन्ममें अपना शिर कटा हुआ देखा होगा ॥ और कभी उडते हुएभी देखा होगा ॥ इसलिये तुमको स्वप्नमें ऐसी प्रतीत हुई कि हमारा शिर कटा हुआ है ॥ या हम उडे जाते हैं ऐसा स्वप्नमें प्रतीति होना यह पूर्वजन्मके संस्कारसे है ॥

शंका॥आपने जो कहा कि पूर्वजन्मका संस्कार अन्तःकरणमें स्थित रहता है ॥ ऐसा कहना बनता नहीं क्योंकि किसी पुरुषकोभी ऐसा संस्कार नहीं रहता कि पूर्वजन्ममें हमारा शरीर ऐसा था और इस स्थानपै था तौ फिर किस प्रकार सिद्ध हो सक्ता है कि पूर्वजन्मका संस्कार अन्तःकरणमें स्थित रहता है ॥

उत्तर ॥ पूर्वजन्मका संस्कार तौ अन्तःकरणमें रहता है ॥ परंतु जो वस्तु अत्यन्त सुखके देनेवाली होती

है ॥और जो वस्तु अत्यन्त दुःखके देनेवाली होती है॥ उस वस्तुका संस्कार रहता है ॥ किन्तु सामान्यका नहीं रहता ॥ जैसे बालक उत्पन्न होतेही दूध पीने लगता है और उसने इस जन्ममें तो कभी दूध पियाही नहीं और नहीं कभी सुना कि दूधके पीनेसे शरीरकी रक्षा होती है॥ परंतु वह बालक उत्पन्न होतेही दूध पीने लगता है ॥ इससे यह सिद्ध हुआ कि पूर्वजन्ममें जो पीनेसे उसके शरीरकी रक्षा दूध हुई है ॥ और उसने दूध पिया है ॥ इस कारणसे वह उत्पन्न होतेही दूध पीने लगता है ॥ इससे यह सिद्ध हुआ कि पूर्वजन्मका संस्कार अन्तःकरणमें अवश्य रहता है ॥ इसी प्रकार जाग्रत् अवस्थामें देखे और सुने पदार्थोंका जो अन्तः-करणमें संस्कार तिस संस्कार करके निद्रासमय विषे जो प्रपंच प्रतीति हो तिसको स्वप्न अवस्था कहते हैं॥२४॥

अथ सुषुप्तिअवस्था वर्णन।

अतः सुषुप्त्यवस्था का । अहं किमपि न जानामि सुखेन मया निद्रानुभूयत

इति सुषुप्त्यवस्था । कारणशरीराभिमानी आत्मा प्राज्ञ इत्युच्यते ॥ २५ ॥

टीका ॥ प्रश्न ॥ इसके अनन्तर सुषुप्ति अवस्था कौनसी है ॥

उत्तर ॥ मैं कुछ नहीं जानता हुआ केवल सुखपूर्वक मैंने निद्राकाही अनुभव किया ऐसी गाढ निद्राकोही सुषुप्ति अवस्था कहते हैं ॥ और तिसमें कारणशरीर है ॥ तिस कारणशरीरव्याष्टिका अभिमानी जीवात्मा है ॥ प्राज्ञ है नाम जिनका ॥ और वही आत्मा सुषुप्ति अवस्था कारण समष्टि अभिमानी होनेसे ईश्वर आत्मा है ॥ अव्याकृत है नाम जिसका ॥ और जीवात्मामें और ईश्वर आत्मामें कुछभी भेद नहीं ॥ किंतु व्यष्टिसमष्टि भेद करके भेद प्रतीत होता है और वास्तवमें तो व्यष्टि और समष्टि भेद कल्पित हैं ॥ और जब कि व्यष्टिसमष्टि भेद कल्पित हैं तो फिर जीव ईश्वरभावभी कल्पित है क्योंकि जीव ईश्वर भाव व्यष्टि समष्टि भेद करके है ॥ किन्तु

वास्तव आत्मा शुद्ध है और एक है ॥ जैसे घटाकाश और मठाकाशमें घट और मठ भेद करके भेद प्रतीत होता है ॥ क्योंकि आकाश तौ दोनोंमें एकही है ॥ और जैसे घटाकाश और मठाकाशमेंसे घट मठ कल्पित भावके त्यागनेसे केवल एक आकाशही रह जाता है ॥ इसी प्रकार जीवात्मा अर्थात् अलपज्ञ चैतन्य और ईश्वरात्मा अर्थात् सर्वज्ञ चैतन्य इन दोनोंमें-से सर्वज्ञता और अलपज्ञता इस कल्पित भेदको त्यागनेसे आकाशवत् एक शुद्ध चैतन्य चतुर्थ अवस्था तुर्य्यरूप तीनों अवस्थाओंका साक्षी है ॥ इन अवस्थाओंके पश्चात् पंचकोशोंको कहता हूं ॥ २५ ॥

अथ पंचकोशवर्णन ।

पंच कोशाः के । अन्नमयः, प्राणमयः, मनोमयः, विज्ञानमयः, आनंदमयश्चेति ॥ २६ ॥

टीका ॥ प्रश्न ॥ पांच कोश कौनसे हैं ॥

उत्तर ॥ प्रथम तौ अन्नमय कोश है ॥ दूसरे प्राण-

मय कोश है ॥ तीसरे मनोमय कोश है ॥ चौथे विज्ञानमय कोश है ॥ पांचवां आनंदमय कोश है॥और कोश नाम मियानका है और ये पांच कोश आत्माके रहनेका स्थान है ॥ २६ ॥

अथ अन्नमयकोशवर्णन ।

अन्नमयः कः । अन्नरसेनैव भूत्वा अन्नरसेनैव वृद्धिं प्राप्य अन्नरूपपृथिव्यां यद्विलीयते तदन्नमयः कोशः स्थूलशरीरम् ॥ २७ ॥

टीका ॥ प्रश्न ॥ अन्नमय कोश किसको कहते हैं ॥

उत्तर ॥ अन्नके रससे जो उत्पन्न होय और अन्नके रससे जिसकी वृद्धि होय ॥ और अन्नरूप पृथिवीमें जो लीन हो जाय तिसको अन्नमय कोश कहते हैं ॥ अर्थात् स्थूलशरीर ॥

प्रश्न ॥ आपने जो कहा कि स्थूलशरीर अन्नके रससे उत्पन्न होता है ॥ और अन्नरससे बढता है ॥ सो किस प्रकार उत्पन्न होता और बढता है ॥

उत्तर ॥ अन्न करके अस्थिमांसादि वस्तुओंको पुष्टता प्राप्त होती है॥ और उस पुष्टता करके अस्थि-मांसादि वस्तुओंका वीर्य बनता है ॥ और उस वीर्यका स्त्रीके रुधिरके सम्बंधसे स्थूल शरीर बनता है ॥ और वह वीर्य महा अशुद्ध है ॥ कि जिसके स्पर्शमात्रहीसे स्नानकी अपेक्षा होती है ॥ और ऐसी अशुद्ध वस्तुका बनकरकेभी ऐसा विकाररूप है कि जिसमें कोई-भी वस्तु शुद्ध नहीं ॥ अर्थात् अस्थि मांस रुधिर मज्जा आदि वस्तु विकाररूप हैं ॥ और मल मूत्र करके ऐसा पूर्ण है कि पाखानेसेभी अधिक॥ क्योंकि पा-खाना तो कुछ कालतक मल मूत्र करके रहितभी हो जाता॥ परंतु यह ऐसा पाखाना है कि जिसमें थोडा बहुत मल मूत्र सदाही भरा रहता है॥ और फिर कैसा है कि अनित्य अर्थात् पलभर जिसके रहनेका विश्वास नहीं है परंतु बडा आश्चर्य है कि ऐसे विकाररूप शरीरको पाकर इसको ऐसा जानते हैं कि हम बडे शूरवीर हैं और बडे प्रतापी हैं॥ और हमारा बडा

दिव्य रूप है और इस नाशवान् शरीरको हमेशा रहने-
वाला जानकर इसके वास्ते अनेक प्रकारके पापोंसे
धनको संग्रह करते हैं ॥ परंतु ऐसा विचार नहीं करते
कि बडे बडे चक्रवर्ती राजा अपने चक्रवर्ती राज्यको
छोडकर चले गये ॥ परंतु यह उनके संगमें कोईभी
वस्तु नहीं गई ॥ तो फिर मैं जो झूंठ और कपटसे धन-
को संग्रह करता हूं ॥ और ये मेरे संगमें कैसे जावेगा ॥
इसलिये बडा आश्चर्य्य है कि विकाररूप अनित्य
शरीरके वास्ते अनेक प्रकारके झगडे ठानते हैं ॥ और
यह बहुतही बडा आश्चर्य्य है कि जो पुरुष पदार्थोंको
विकाररूप और नाशवान् जानते हैं ॥ और ऐसा कथ-
नभी करते हैं कि शरीरादि पदार्थ विकाररूप और
नाशवान् हैं ॥ परंतु पदार्थोंमेंसे आसक्तता नहीं छोड-
ते ॥ इसलिये यह शरीर अन्नरससे जो उत्पन्न हुआ है ॥
सो महान् विकाररूप है ॥ और इस शरीरकी जो अन्न-
रससे वृद्धि होती है ॥ सोभी महान् दुःखरूप है ॥ क्यों
कि अन्नरस जो वीर्य्यातिशयसे उत्पन्न होकर अन्नसे

उत्पन्न हुआ जो दूध तिसके पीनेसे यह शरीर कुमार अवस्थाको जो प्राप्त होता है॥ सो कुमारअवस्थाभी महान् दुःखरूप है॥ क्योंकि बालक अवस्थामें पराधीन रहना पडता है॥ और पराधीनताके समान कोई दुःखभी नहीं॥ और बालकअवस्थाके पश्चात् अन्नके खानेसे जो यह शरीर युवाअवस्थाको प्राप्त होता है॥ सो युवाअवस्था महान् दुःखरूप है॥ क्योंकि युवाअवस्थामें कामातुर होकर स्त्रीके वशमें हो जाता है और जैसे कलंदर बंदरसो घरघर नचाता फिरता है॥ इसी प्रकार स्त्री कामातुर पुरुपको घर घर भोगरूप दंडसे नचाती है॥ और महान् दुःखको प्राप्त करती है॥ और युवाअवस्थाके पश्चात् अन्नके खानेसे जो वृद्ध अवस्था प्राप्त होती है॥ सो वृद्ध अवस्था महान् दुःखरूप है॥ क्योंकि जितने रोग हैं वे सब वृद्धअवस्थामें शरीरके बीचमें आय प्राप्त होते हैं॥ और सम्बंधी लोकभी तिरस्कार करने लगते हैं॥ इसवास्ते वृद्धावस्थाभी महान् दुःखरूप है॥ और जब शरीर छूटने

लगता है ॥ उस वक्त एक तरफ तौ यमके दूत आकर दुःख देते हैं ॥ और इस तरफ स्त्री पुत्र आकर रोते हैं। और कोई वस्त्र अच्छा होता है और कोई अंगूठीभी हाथमें हो तौ इन सब वस्तुओंको उतार लेते हैं ॥ और उलटा ऐसा दुःख देते हैं कि जो कहीं रक्खा रखाया धन हो तौ उसको बताओ इसी प्रकार दोनों तरफसे महादुःखी होकर शरीरको छोड देता है ॥ और यह शरीर अन्नरूप पृथिवीमें लीन हो जाता है ॥ इसवास्ते स्थूल शरीरको अन्नमय कोश कहते हैं ॥ और दुबला होना मोटा होना यह अन्नमय कोशका स्वभाव है ॥ २७ ॥

अथ प्राणमयकोशवर्णन।

प्राणमयः कः । प्राणादिपंच वायवः वागादींद्रियपंचकं प्राणमयः ॥ २८ ॥

टीका ॥ प्रश्न ॥ प्राणमय कोश किसको कहते हैं ॥ उत्तर ॥ प्राणसे आदि लेकर जो पांच वायु हैं ॥ और वाक्‌से आदि लेकर जो पांच कर्मेन्द्रियें हैं ॥ इन सबको मिलके जो है तिसको प्राणमय कोश कहते हैं ॥

प्रश्न ॥ प्राणसे आदि लेकर जो पांच वायु हैं सो कौनसी हैं ॥ और इस शरीरमें कहांपर रहती हैं ॥ और क्या उनका स्वभाव है सो कहो ॥

उत्तर ॥ प्राण १ अपान २ समान ३ उदान ४ व्यान ५ यह पांच प्राणवायु हैं ॥ और इस शरीरमें प्राणका हृदयमें निवास है ॥ और अपान वायुका गुदामें निवास है ॥ और समान वायुका नाभिमें निवास है ॥ और उदान वायुका कंठमें निवास है ॥ और व्यान वायुका सम्पूर्ण शरीरमें निवास है ॥ यह पांच वायुओंके स्थान हैं ॥ और प्राणवायु जो हृदयमें रहती है ॥ सो ऊपरको चला करती है और शब्दके स्वरूपको बनाना इसका स्वभाव है ॥ और गुदामें जो अपान वायु है सो नीचेको चला करती है ॥ और मल मूत्रका त्याग करना उसका स्वभाव है ॥ और नाभिमें जो समान वायु सो सर्व खानपानको पाचन करके नाडियोंमें जुदा जुदा पहुँचाती है और वह सर्व नाडियोंमें फिरा करती है ॥ और जो उदान वायु कंठमें रहती है ॥ सो अन्न जल

अर्थात् खानपानको ग्रहण करके समान वायुके पास पहुँचाती है ॥ और व्यान वायु जो सब शरीरमें रहती है ॥ सो सब रुधिरको चलाया करती है ॥ और शरीरको दुबला मोटा करना यह इसका स्वभाव है ॥ ये पांच वायु हैं ॥ और वाक् पाणि पाद पायु उपस्थ यह पांच कर्मेन्द्रिय ॥ और पांच प्राण इन दशोंको प्राणमय कोश कहते हैं ॥ और भूख प्यास प्राणमय कोशका स्वभाव है ॥ और यह प्राणमय कोश सर्व शरीरोंका जीवनहेतु है ॥ क्योंकि शरीरमें श्रवणइन्द्रियके नहीं रहनेसे बधिर हो जाता है ॥ और नेत्रोंके नहीं रहनेसे अंधा हो जाता है ॥ और जिह्वाके नहीं रहनेसे गूँगा हो जाता है ॥ इसी प्रकार शरीरमें इन्द्रियोंके नहीं रहनेसे शरीरकी दशा बिगड जाती है ॥ और मनके नहीं रहनेसे सुषुप्ति अवस्था हो जाती है परंतु मृत्यु नहीं होती ॥ और प्राणोंके नहीं रहनेसे शरीरकी मृत्यु हो जाती है ॥ और महान् भयंकर हो जाता है ॥ और सम्पूर्ण मनुष्य उसको त्याग देते हैं ॥ इसलिये

प्राणमय कोश सम्पूर्ण शरीरोंका जीवनहेतु है ॥ इति प्राणमयकोशः अर्थात् यह प्राणमय कोश है ॥ २८ ॥

अथ मनोमयकोशवर्णन ।

मनोमयः कोशः कः । मनश्च ज्ञानेंद्रियपंचकं मिलित्वा भवति स मनोमयः कोशः ॥२९॥

टीका ॥ प्रश्न ॥ मनोमय कोश किसको कहते हैं ॥

उत्तर ॥ एक मन और श्रोत्र त्वक् चक्षु रसना घ्राण इन सबको मनोमय कोश कहते हैं ॥ और यह संकल्पविकल्परूप मनोमय कोश इस शरीरमें कर्मोंका करनेवाला ॥ और कर्म्मोंका फल जो सुख दुःख तिसका भोगनेवाला है ॥ क्योंकि जबतक शरीरमें मनोमय कोश रहता है तबतक शरीरमें क्रियाशक्ति रहती है और जब शरीरमें मनोमय कोश नहीं रहता ॥ अर्थात् तमरूप निद्रा करके आच्छादित हो जाता है ॥ तब शरीरमें क्रिया शक्ति और भोगनेकी शक्ति नहीं रहती इससे यह सिद्ध हुआ कि इस शरीरमें संकल्पविकल्परूप कर्म्मोंका करनेवाला और सुख दुःखका भोग-

नेवाला मनोमय कोश है ॥ इति मनोमयः कोशः॥२९॥

अथ विज्ञानमयकोशवर्णन ।

विज्ञानमयः कः।बुद्धिर्ज्ञानेन्द्रियपंचकं मिलित्वा यो भवति स विज्ञानमयः कोशः३०॥

टीका ॥ प्रश्न ॥ विज्ञानमय कोश किसको कहते हैं ॥ उत्तर ॥ एक बुद्धि और श्रोत्र त्वक् चक्षु रसना घ्राण इन सबको मिलके जो है तिसको विज्ञानमय कोश कहते हैं ॥ और सत्य असत्यका निश्चय करना विज्ञानमय कोशका स्वभाव है ॥ इसको विज्ञानमय कोश कहते हैं ॥ ३० ॥

अथ आनंदमयकोशवर्णन ।

आनंदमयः कः । एवमेव कारणशरीरभूताविद्यास्थमलिनसत्त्वं प्रियादिवृत्तिसहितं सत् आनंदमयः कोशः । एतत्कोशपंचकम् ॥ ३१ ॥

टीका ॥ प्रश्न ॥ आनंदमय कोश किसको कहते हैं॥

उत्तर ॥ इसी प्रकार कारणरूप जो अविद्या तिसमें जो मलिनसत्त्व अर्थात् रजोगुण तमोगुण करके सतोगुण दबा हुआ ॥ और प्रियादिवृत्तिसहित हुआ हुआ जो है तिसको आनंदमय कोश कहते हैं ॥ ये पांच कोश हैं ॥

प्रश्न॥ प्रियादिवृत्ति कौनसी हैं॥ तिनको वर्णन करो॥

उत्तर ॥ प्रियादिवृत्ति तीन प्रकारकी हैं ॥ एक प्रिय दूसरी मोद तीसरी प्रमोद ॥ यह तीन प्रकारकी वृत्ति है॥ अभीष्ट वस्तुके देखनेसे जो आनंद होता है तिसको प्रिय कहते हैं ॥ और अभीष्ट वस्तुके प्राप्त होनेसे जो आनंद होता है तिसको मोद कहते हैं ॥ और अभीष्ट-वस्तुके भोगनेसे जो आनंद होता है तिसको प्रमोद कहते हैं ॥ यह प्रिय मोद प्रमोद तीन प्रकारकी वृत्ति हैं॥

प्रश्न॥ आपने जो कहा कि आनंदमय कोश प्रियादि वृत्तिसहित है और सुषुप्ति अवस्थामें होता है ॥ परंतु सुषुप्ति अवस्थामें प्रियादि वृत्ति नहीं बन सक्ती ॥ क्यों कि सुषुप्ति अवस्था गाढ निद्राको कहते हैं ॥ तो फिर आनंदमय कोश सुषुप्ति अवस्थामें कैसे होताहै सो कहो॥

उत्तर ॥ प्रियादिवृत्ति सुषुप्ति अवस्थामें अवश्य होती हैं ॥ क्यों कि जिस समय पुरुष थकित हुआ हुआ आता है उस समय ऐसा चाहता है कि मेरेको ऐसी निद्रा आवे कि जिसमें कुछभी बोध नहीं रहे॥और जब वो अभीष्ट वस्तुरूप निद्रा आती है तब उसको आते हुए देखकर जो आनंद होता है ॥ तिसको प्रिय कहते हैं ॥ और अभीष्ट वस्तुरूप निद्राके प्राप्त होनेसे जो आनंद होता है तिसको मोद कहते हैं॥और अभीष्ट वस्तुरूप निद्राके भोगनेसे जो आनंद होता है तिसको प्रमोद कहते हैं ॥ इस प्रकार सुषुप्ति अवस्थामें आनंदमय कोश प्रियादिवृत्तिसहित होता है॥इति पंच कोशाः॥ और शुद्धसच्चिदानन्दस्वरूप जो आत्मा है सो इन पांचों कोशोंके सम्बंधसे कोशरूप प्रतीत होता है ॥ जैसे स्वच्छ जो मणि है सो नीलवस्त्रके साथ सम्बंध होनेसे नीली प्रतीत होती है ॥ और पीतवस्त्रके साथ सम्बंध होनेसे पीली प्रतीत होती है और ऐसेही जैसे वस्त्रके साथ संबंध होगा वह मणि वैसी वैसी प्रतीत होगी परंतु

वास्तव मणिका स्वरूप शुद्ध है इसी प्रकार शुद्ध जो आत्मा है ॥ सो अन्नमय कोशके साथ सम्बंध होनेसे मैं दुबला हूं मोटा हूं ऐसे भावको प्राप्त हुआ प्रतीत होता है॥और प्राणमय कोशके साथ सम्बंध होनेसे मैं भूखा हूं प्यासा हूं ऐसे भावको प्राप्त हुआ प्रतीत होता है ॥ और मनोमय कोशके साथ सम्बंध होनेसे संकल्प विकल्प करता प्रतीत होता है ॥ और विज्ञानमय कोशके साथ सम्बंध होनेसे पदार्थोंका निश्चय करना अथवा मैं ज्ञानी हूं मैं अज्ञानी हूं ऐसे भावको प्राप्त हुआ प्रतीत होता है ॥ और आनंदमय कोशके साथ सम्बंध होनेसे मैं सुखी हूं मैं दुःखी हूं ऐसे भावको प्राप्त हुआ प्रतीत होता है ॥ और वास्तवमें तो आत्मा शुद्ध सच्चिदानंदस्वरूप है परंतु कोशोंके सम्बंधसे कोशरूप प्रतीत होता है इति पंच कोशाः ॥ ३१ ॥

मदीयं शरीरं मदीयाः प्राणाः मदीयं मनश्च मदीया बुद्धिर्मदीयं ज्ञानमिति स्वेनैव ज्ञायते । तद्यथा मदीयत्वेन ज्ञातं

कटककुंडलगृहादिकं स्वस्माद्भिन्नं तथा पंचकोशादिकं मदीयत्वेन ज्ञातमात्मा न भवति ॥ ३२ ॥

टीका ॥ मेरा शरीर है मेरे प्राण हैं मेरा मन है मेरी बुद्धि है मेरा ज्ञान है यह सब अपनेही करके जाने जाते हैं ॥ परंतु यह आत्मा नहीं है ॥ क्योंकि जैसे कडे कुंडल और गृह इत्यादि और जो सब पदार्थ हैं सो सब अपनेही करके जाने जाते हैं ॥ परंतु हैं अपनेसे भिन्न इसी प्रकार ये पांच कोश अपनेही करके जाने जाते हैं ॥ परंतु ये पांच कोश आत्मा नहीं है ॥ ३२ ॥

अथ आत्मा सच्चिदानंदस्वरूपवर्णन ।

आत्मा तर्हि कः । सच्चिदानंदस्वरूपः ॥ ३३ ॥

टीका ॥ प्रश्न ॥ तीन जो शरीर हैं ॥ स्थूल, सूक्ष्म, कारण ॥ और तीन अवस्था ॥ जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति ॥ और पांच कोश ॥ अन्नमय, प्राणमय, मनोमय,

विज्ञानमय, आनंदमय ॥ ये सब आत्मा नहीं हैं तौ आत्मा कौन है ॥

उत्तर ॥ आत्मा सत् चित् आनंदस्वरूप है ॥३३॥

अथ सच्चिदानंदार्थवर्णन।

सत्किम् । कालत्रयेऽपि तिष्ठतीति सत् । चित्किं ज्ञानस्वरूपं। आनंदः कः। सुखस्वरूपः । एवं सच्चिदानंदस्वरूपं स्वात्मानं विजानीयात् ॥ ३४ ॥

टीका ॥ प्रश्न ॥ सत् किसको कहते हैं ॥

उत्तर ॥ भूत्, भविष्यत्, वर्तमान इन तीनों कालोंमें जो नाशको नहीं प्राप्त हो अर्थात् जिसका नहीं कभी नाश हुआ हो ॥ और नहीं अब नाश है ॥ और जिसका आगेभी नाश नहीं होगा ॥ ऐसा जो तीनों कालोंमें स्थित रहे न्यून अधिक भावको नहीं प्राप्त हो ऐसा जो है तिसको सत् कहते हैं ॥

प्रश्न ॥ चित् किसको कहते हैं ॥

उत्तर ॥ ज्ञानस्वरूप सम्पूर्ण जगत्को सत्ता स्फूर्ति देनेवाला और सबसे न्यारा सबका साक्षी ॥ जैसे राजा अपनी सेनासे न्याराभी है और सबका साक्षी है ॥ इसी प्रकार आत्मा सबसे न्यारा है और सबका साक्षी है ॥ ऐसा जो है तिसको चित् कहते हैं ॥

प्रश्न ॥ आनंद किसको कहते हैं ॥

उत्तर ॥ सुखस्वरूप कि जिसमें दुःखका लेशमात्रभी नहीं ॥ और कूटस्थ अर्थात् जैसे लोहेकी ऐहरनके ऊपर अनेक प्रकारके बरतन बनबनकर चले जाते हैं ॥ परंतु वह ऐहरन अपने स्वरूपको नहीं त्यागती ॥ इसी प्रकार चैतन्य आत्माकी सत्तासे अनेक मायिक जो पदार्थ सो बनते रहते हैं ॥ परंतु वह आत्मा अपना जो सुखरूप है तिसको नहीं त्यागता ॥ क्योंकि आत्मा सुखस्वरूप है ॥ और जैसे सूर्य्यके बीचमें अंधकार और प्रकाश दोनों नहीं बनते ॥ सूर्य्यको प्रकाशरूप होनेसे इसी प्रकार आत्मामें दुःख सुख दोनों नहीं बनते ॥ क्योंकि आत्मा सुखस्वरूप है ऐसा जो है ॥ तिसको

आनंद कहते हैं ॥ और ऐसा जो सच्चिदानंदस्वरूप है ॥ तिसको अपना आत्माही जाने ॥ अर्थात् वह मेरेसे पृथक् नहीं है ॥ और ऐसे जाननेकोही परमानंद कहते हैं ॥ ३४ ॥

अथ चतुर्विंशतितत्त्वोत्पत्तिप्रकारंवक्ष्यामः।

अब मायासे चौवीस तत्वोंकी उत्पत्तिके प्रकारको कहता हूं ॥

अथ मायासे पांचों तत्वोंकी उत्पत्ति वर्णन।

ब्रह्माश्रया सत्त्वरजस्तमोगुणात्मिका माया अस्ति । ततः आकाशः संभूतः। आकाशाद्वायुः । वायोस्तेजः । तेजस आपः। अद्भ्यः पृथिवी ॥ ३५ ॥

टीका ॥ ब्रह्मके आसरे सत् रज तम तीन गुणरूप माया है ॥ तिस मायासे आकाश उत्पन्न हुआ ॥ और आकाशसे वायु ॥ और वायुसे अग्नि ॥ और अग्निसे

जल ॥ और जलसे पृथिवी उत्पन्न हुई ॥ इस प्रकार मायासे पांच तत्त्व उत्पन्न हुए ॥ अथवा ॥ ब्रह्मके आसरे सत् रज तम तीन गुणरूप माया अभिन्न रूपतासे स्थित है ॥ जैसे अग्निमें दाहशक्ति अभिन्न रूपतासे स्थित है ॥ अर्थात् दाहशक्ति अग्निसे भिन्नभी नहीं और अग्निके आसरेभी है ॥ इसी प्रकार माया ब्रह्मसे भिन्नभी नहीं और ब्रह्मके आसरेभी है ॥ अर्थात् ब्रह्ममें माया अनिर्वचनीय है तिस मायासे शब्दतन्मात्रा उत्पन्न हुई॥तिस शब्दसे आकाश उत्पन्न हुआ इसवास्ते आकाशमें शब्दगुण है और आकाशसे स्पर्शतन्मात्रा उत्पन्न हुई ॥ तिस स्पर्शसे वायु उत्पन्न हुई ॥ इसवास्ते वायुमें शब्द स्पर्श दोनों गुण हैं ॥ और वायुसे रूपतन्मात्रा उत्पन्न हुई तिस रूपसे अग्नि उत्पन्न हुई ॥ इसवास्ते अग्निमें शब्द स्पर्श रूप तीनों गुण हैं ॥ और तिस अग्निसे रसतन्मात्रा उत्पन्न हुई तिस रससे जल उत्पन्न हुआ इसवास्ते जलमें शब्द स्पर्श रूप रस चारों गुण हैं ॥ और जलसे गंधतन्मात्रा उत्पन्न हुई ॥ और गंधसे पृथिवी उत्पन्न

हुई॥ इसवास्ते पृथिवीमें शब्द स्पर्श रूप रस गंध यह पांचों गुण हैं॥ क्योंकि कार्य्यमें कारण गुण अवश्यही होता है॥ इस प्रकार मायासे सूक्ष्म तन्मात्रा सहित पांच तत्त्व उत्पन्न हुए॥ जैसे माया तीन गुणरूप है॥ इसी प्रकार पांच तत्व सत् रज तम तीन गुण रूप हैं॥ और इन तीन गुणरूप पांचों तत्वोंसे सम्पूर्ण संसार उत्पन्न हुआ है तिसको सुनो॥ ३८॥

अथ पांचतत्वोंसे ज्ञानेंद्रिय और अन्तःकरणकी उत्पत्तिवर्णन।

एतेषां पंचतत्त्वानां मध्ये आकाशस्य सात्त्विकांशात् श्रोत्रेंद्रियं संभूतम्। वायोः सात्त्वकांशात् त्वगिंद्रियं संभूतम्। अग्नेः सात्त्विकांशात् चक्षुरिन्द्रियं संभूतम्। जलस्य सात्त्विकांशात् रसनेंद्रियं संभुतम्। पृथिव्याः सात्त्विकांशात् घ्राणेंद्रियं संभूतम्। एतेषां पंचतत्त्वा-

नां समष्टिसात्त्विकांशात् मनोबुद्ध्यहंकाराचित्तांतःकरणानि संभूतानि ॥ ३६ ॥

टीका ॥ इन पाचों तत्त्वोंके मध्यमेंसे आकाशके सतोगुणअंशसे श्रोत्र अर्थात् कानोंकी उत्पत्ति हुई ॥ और वायुके सतोगुणअंशसे त्वचाइन्द्रियकी उत्पत्ति हुई ॥ और अग्निके सतोगुण अंशसे नेत्र इन्द्रियकी उत्पत्ति हुई ॥ और जलके सतोगुणअंशसे रसना अर्थात् जिह्वाइन्द्रियकी उत्पत्ति हुई ॥ और पृथिवीके सतोगुण अंशसे घ्राण अर्थात् नासिकाइन्द्रियकी उत्पत्ति हुई ॥ और इन पांचों तत्त्वोंके सबके सतोगुण अंशसे मन चित्त बुद्धि अहंकार यह अन्तःकरण उत्पन्न हुआ ॥

प्रश्न ॥ जैसे पांचों तत्त्वोंके सतोगुणका कार्य्य श्रोत्रादि पांच ज्ञानेन्द्रियें हैं ॥ वैसेही पांचों तत्त्वोंके सतोगुणका कार्य्य अन्तःकरण है ॥ तौ फिर ऐसा भेद क्यों है कि इन्द्रिय तौ एक एक विषयको ग्रहण करती है ॥ और अन्तःकरण पांचों विषयको ग्रहण करता है ॥

उत्तर ॥ जैसे पांचों तत्त्वोंके सतोगुणका कार्य्य इन्द्रिय है॥ वैसेही अन्तःकरण है॥ परंतु इतनाही भेद है कि इन्द्रिय एक एक तत्त्वका कार्य्य है ॥ इसवास्ते इन्द्रिय एक एक विषयको ग्रहण करती है॥ और अन्तःकरण पांचों तत्त्वोंके सबके सतोगुणका कार्य्य है॥ इसवास्ते अन्तःकरण पांचों विषयोंको ग्रहण करता है॥ ३६॥

अथ अन्तःकरणका स्वरूपवर्णन।

संकल्पविकल्पात्मकं मनः॥ निश्चयात्मिका बुद्धिः। अहं कर्त्ता अहंकारः। चिंतनकर्तृ चित्तम्। मनसो देवता चंद्रमाः। बुद्धेर्ब्रह्मा। अहंकारस्य रुद्रः। चित्तस्य वासुदेवः॥ ३७॥

टीका॥ अन्तःकरणका वास्तव स्वरूप तौ एकही है॥ परंतु क्रियाभेद होनेसे चार प्रकार करके नामभेद हुआ॥ जैसे कोई एक ब्राह्मण मंदिरमें पूजन करने लगा तौ उसको पुजारी कहने लगे और जब पढने-

पढाने लगा तब उसको पंडित कहने लगे ॥ इसी प्रकार एक ब्राह्मणके अनेक नाम क्रियाभेद होनेसे हो गये ॥ ऐसेही अन्तःकरणका वास्तव स्वरूप एकही है ॥ परंतु संकल्प विकल्प करने लगा तौ उसका नाम मन हो गया ॥ और जब चिन्तवन करने लगा तब उसका नाम चित्त हो गया ॥ और जब उसने निश्चय किया तब वही बुद्धि हो गई ॥ और जब उसमें अहंकृत भाव आया तब वही अहंकार हो गया ॥ जैसे किसी पुरुषको देखा कि यह पुरुष वोही है या कोई और है ॥ जब ऐसी अन्तःकरणकी वृत्ति हुई तिसको मन कहने लगे ॥ और जब उस वृत्तिने ऐसा विचार किया कि इस पुरुषको श्रीगंगाजीके तीरे उस समय देखा था ऐसी वृत्तिको चित्त कहने लगे ॥ और जब उस वृत्तिने निश्चय किया कि यह पुरुष वही है ॥ तब उसी वृत्तिको बुद्धि कहने लगे ॥ और जब उसने दृढ निश्चय किया कि यह पुरुष वही है ॥ इसमें किंचित् भी संदेह नहीं तब उसी वृत्तिको अहंकार कहने लगे ॥

इसी प्रकार अन्तःकरणका वास्तव स्वरूप एकही है ॥ परंतु क्रियाभेद होनेसे मन, चित्त, बुद्धि, अहंकार, चार भेद हुए ॥ ३७ ॥

अथ पंचतत्त्वोंसे कर्मेंद्रिय और प्राणोत्पात्तिवर्णन।

एतेषां पंचतत्त्वानां मध्ये आकाशस्य राजसांशात् वागिंद्रियं संभूतम् । वायो राजसांशात् पाणींद्रियं संभूतम्। वह्नेः राजसांशात् पादेंद्रियं संभूतम् । जलस्य राजसांशात् उपस्थेंद्रियं संभूतम् । पृथिव्या राजसांशात् गुदेंद्रियं संभूतम्।एतेषां पंचतत्त्वानां समष्टिराजसांशात् पंच प्राणाः संभूताः ॥३८॥

टीका॥ इन पांचों तत्त्वोंके मध्यमेंसे आकाशके रजोगुण अंशसे वाणी उत्पन्न हुई ॥ और वायुके रजोगुण अंशसे पाणी अर्थात् हाथ उत्पन्न हुए ॥ और अग्निके

रजोगुण अंशसे पाद अर्थात् पाओं उत्पन्न हुए ॥ और जलके रजोगुण अंशसे उपस्थ अर्थात् लिंगइंद्रिय उत्पन्न हुई ॥ और पृथिवीके रजोगुण अंशसे गुदा उत्पन्न हुई ॥ और इन पांचों तत्त्वोंके सबके रजोगुण अंशसे पांच प्राण उत्पन्न हुए ॥ और पांचों तत्त्वोंके सतोगुण रजोगुणसे सूक्ष्म शरीर हुआ ॥ और अब तमोगुणसे स्थूल शरीर हुआ यह कहता हूं ॥ ३८ ॥

अथ पंचीकरणवर्णन।

एतेषां पंचतत्त्वानां तामसांशात् पंचीकृतपंचतत्त्वानि भवंति। पंचीकरणं कथं इति चेत् । एतेषां पंचमहाभूतानां तामसांशस्वरूपं एकं एकं भूतं द्विधा विभज्य एकं एकमर्धं पृथक् तूष्णीं व्यवस्थाप्य अपरमपरमर्धं चतुर्धा विभज्य स्वार्धमन्येषु अर्धेषु स्वभागचतुष्टयसंयोजनं कार्यं तदा पंचीकरणं भवति।

एतेभ्यः पंचीकृतपंचमहाभूतेभ्यः स्थूलशरीरं भवति । एवं पिंडब्रह्मांडयोरैक्यं संभूतम् ॥ ३९ ॥

टीका ॥ इन पांचों तत्त्वोंके तामस अंशसे पंचीकृत पंचमहाभूत अर्थात् पंचीकरण हुआ यदि तुम कहो कि पंचीकरण क्या है ॥ तौ श्रवण करो ॥ इन पांचों तत्त्वोंके तामसअंश करके एक एक तत्त्वके दो दो भाग किये तिसमें से एक एक भाग जुदा जुदा चुपचाप स्थापन कर दिया ॥ और आधा आधा जो बाकी बचा तिसके चार चार भाग करके अपने अपने आधे आधेको छोडकर उन चारोंमें एक एक मिला दिया ॥ तब सबके पास आधा आधा अपना और आधे आधेमें वो चारों हो गये ॥ इस प्रकार पंचीकरण होता है ॥ दृष्टांत ॥ एक समय पांच पुरुष श्रीगंगाजी महारानीके दर्शन वा स्नानको गये॥और उनके पास भोजनोंके वास्ते कुछ फलभी थे ॥ और उनमें एक ब्राह्मण था उसके पास नौं नारंगी थीं ॥ और दूसरा क्षत्री था उसके पास नौं नाशपाती थीं और

तीसरा वैश्य था उसके पास नौं सीताफल थे ॥ चौथा और कायस्थ था उसके पास नौं आम थे ॥ और पांचवाँ जाट था उसके पास नौं बेल थे और जब यह पांचों पुरुष श्रीगंगाजीके किनारे पहुँचे तब स्नान और श्रीगुरुके चरणोंका ध्यान करके अर्थात् नित्यकर्मसे निश्चित होकर जब भोजन करने लगे तब पांचोंने एक एक फल श्रीगंगाजीके अर्पण करा ॥ और तब उनके पास आठ आठ फल बचे ॥ और उस ब्राह्मणने अपनी आठ नारंगियोंमेंसे चार तो अपने पास रक्खीं ॥ और चार उन क्षत्री वैश्य कायस्थ जाट इन चारोंको एक एक बाट दी ॥ इसी प्रकार उस क्षत्रीने अपनी आठ नाशपातियोंमेंसे चार तो अपने पास रक्खीं और चार वैश्य कायस्थ जाट ब्राह्मण इन चारोंको एक एक बाट दीं ॥ इसी प्रकार वैश्यने अपने आठ सीताफलोंमेंसे चार तो अपने पास रक्खे और एक एक उनमेंसे उन चारोंको बाट दिया ॥ इसी प्रकार कायस्थ जाट इन दोनोंने किया ॥ अर्थात् एक एकके पास पांच पांच

प्रकारके फल हो गये ॥ परंतु आधा आधा अपना भाग रहा और आधे आधेमें चारों रहे ॥ अर्थात् सबके पास अपना भाग अधिक रहा ॥ इसी प्रकार आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी इन पांचों तत्त्वोंको जानना ॥ कि आकाशमें आधा भाग तो अपना है और आधेमें वायु अग्नि जल पृथिवी यह चारों हैं इसी प्रकार वायुके पास आधा भाग तो अपना है और आधेमें अग्नि जल पृथिवी आकाश यह चारों हैं ॥ और अग्निके पासभी आधा भाग अपना है और आधा जल पृथिवी आकाश वायु इन चारोंका है ॥ और जलके पासभी आधा भाग अपना है ॥ और आधेमें पृथिवी आकाश वायु अग्नि ये चारों हैं ॥ इसी प्रकार पृथवीके पास आधा भाग तो अपना है और आधेमें आकाश वायु अग्नि जल यह चारों हैं ॥ इस प्रकार इन सबके पास आधा आधा भाग अपना अधिक और आधे आधेमें वे चारों हैं ॥ अर्थात् एक एक तत्त्वके पास पांचों पांचों तत्त्वोंका अंश है ॥ इसको पंचीकरण कहते हैं॥इन पंचीकरण किये हुए पांच

महाभूतों करके स्थूल शरीर बनता है ॥ और इसमें ऐसा नियम है कि जिसमें आकाश तत्त्व अधिक होता है ॥ उस करके देवयोनिके शरीर बनते हैं ॥ जो कि अदृश्य हैं ॥ और जिसमें वायुतत्त्व अधिक है ॥ उस करके पक्षियोंके शरीर बनते हैं ॥ जो कि आकाश मार्गमें विचरनेवाले हैं ॥ और जिसमें अग्नि तत्त्व अधिक होता है उस करके अग्निके बीचमें रहनेवाले जन्तुओंके शरीर बनते हैं ॥ और जिसमें जल तत्त्व अधिक होता है ॥ उस करके जलके बीचमें रहनेवाले ग्राह आदिक जन्तुओंके शरीर बनते हैं ॥ और जिसमें पृथ्वी तत्त्व अधिक होता है ॥ उस करके पृथ्वीके ऊपर विचरनेवाले पशु मनुष्यादिकोंके शरीर बनते हैं ॥ अर्थात् जिसमें यह तत्त्व अधिक होता है ॥ उस शरीरका वही तत्त्व स्थान होता है ॥ इस प्रकार पंचीकरण हुए हुए पांच महाभूतोंकरके स्थूल शरीर बनता है ॥ ३९ ॥

अथ पंचीकरणम् ।

आकाश आठ भाग पूर्ण है.	वायु आठ भाग पूर्ण है.	अग्नि आठ भाग पूर्ण है.	जल आठ भाग पूर्ण है.	पृथ्वी आठ भाग पूर्ण है.
तिसमेंसे चार भाग आकाशके.	तिसमेंसे चार भाग वायुके.	तिसमेंसे चार भाग अग्निके	तिसमेंसे चार भाग जलके.	तिसमेंसे चार भाग पृथ्वीके.
और एक भाग वायुका.	और एक भाग अग्निका.	और एक भाग जलका.	और एक भाग पृथ्वीका.	और एक भाग आकाशका.
एक भाग अग्निका.	एक भाग जलका	एक भाग पृथ्वीका.	एक भाग आकाशका.	एक भाग वायुका.
एक भाग जलका.	एक भाग पृथ्वीका.	एक भाग आकाशका	एक भाग वायुका.	एक भाग अग्निका.
एक भाग पृथ्वीका.	एक भाग आकाशका.	एक भाग वायुका	एक भाग अग्निका.	एक भाग जलका.
इस प्रकार आठों भाग पूर्ण होकर आकाश तत्व अधिक होनेसे देवयोनिके शरीर बन.	इसी प्रकार आठ भाग पूर्ण हाकर वायु तत्व अधिक होनेसे पक्षियोके शरीर बने.	इसी प्रकार आठो भाग पूर्ण होकर अग्नितत्त्व अधिक होनेसे अग्निके रहनेवाले जन्तुओके शरीर बने.	इसी प्रकार आठो भाग पूर्ण होकर जल तत्व अधिक होनेसे ग्राहादिक जलचरोके शरीर बने.	इसी प्रकार आठो भाग पूर्ण होकर पृथ्वी तत्व अधिक हानेसे पशु मनुष्यादिकोके शरीर बने.

इति पंचीकरणम् ।

अथ जीवईश्वरस्वरूप वर्णन ।

स्थूलशरीराभिमानी जीवनामकं ब्रह्मप्रतिबिंबं भवति। स एव जीवः प्रकृत्या स्वस्मात् ईश्वरं भिन्नत्वेन जानाति। अविद्योपाधिः सन् आत्मा जीव इत्युच्यते मायोपाधिः सन् ईश्वर इत्युच्यते॥४०॥

टीका ॥ स्थूल शरीरका जो अभिमानी आत्मा है॥ जीव है नाम जिसका सो ब्रह्मका प्रतिबिंब है ॥ सो जो जीवात्मा है ॥ सो अपने स्वभावसे ईश्वरको अपनेसे भिन्न जानता है ॥ और वास्तवमें भिन्न नहीं है ॥ क्योंकि ब्रह्मके आश्रय सत्, रज, तम, तीन गुण रूप माया अभिन्न रूपतासे स्थित है ॥ तिस मायामें ब्रह्मका प्रतिबिंब है ॥ सो माया दो प्रकारकी है ॥ एक तो शुद्ध सत्वप्रधान माया अर्थात् सतोगुण करके रजोगुण तमोगुण दबा हुआ ॥ और दूसरे मलीन सत्त्वप्रधान अविद्या अर्थात् रजोगुण तमोगुण करके सतोगुण दबा हुआ ॥ इन दोनों माया और अवि-

द्यामें ब्रह्मका प्रतिबिंब है ॥ जो शुद्ध सत्त्वप्रधान मायामें ब्रह्मका प्रतिबिंब है तिसको सर्वशक्तिमान् ईश्वर कहते हैं॥ और मलिन सत्त्वप्रधान अविद्यामें जो ब्रह्मका प्रतिबिंब है॥ तिसको अल्प शक्तिमान् जीव कहते हैं ॥ और इन दोनोंमें माया और अविद्यासे सर्वशक्ति और अल्पशक्ति भेद करके भेद प्रतीत होता है ॥ परंतु वास्तव स्वरूप दोनोंका शुद्ध चैतन्य है और वास्तवमें तो माया और अविद्याभी चैतन्यका विलास है ॥ और विलास विलासवालेसे पृथक् नहीं होता अर्थात् दोनों एकही हैं॥ इस प्रकार जीव ईश्वरमें भेद नहीं ॥ ४० ॥

एवं उपाधिभेदाज्जीवेश्वरभेददृष्टिर्यावत्पर्यंतं तिष्ठति तावत्पर्यंतं जन्ममरणादिरूपसंसारो न निवर्तते, तस्मात्कारणान्न जीवेश्वरयोर्भेदबुद्धिः स्वीकार्या ४१॥

टीका॥ इस प्रकार माया और अविद्या उपाधिभेदकरके जीवईश्वरमें भेदबुद्धि जबतक स्थित रहेगी ॥ तबतक जन्ममरणादि दुःखरूप संसार निवृत्त नहीं

होगा ॥ अर्थात् जिस पुरुषकी जीव-ईश्वरमें भेदबुद्धि है ॥ वह पुरुष सदाही जन्म मरणरूप संसारको प्राप्त होकर अनेक प्रकारके दुःख पाता है ॥ जैसे अन्नके बीचमें जबतक रस बना रहता है ॥ तबतक वह अन्न उत्पन्न होता रहता है ॥ और जब अग्नि करके रस जल जाता है ॥ तब वह अन्न उत्पन्न नहीं होता ॥ इसी प्रकार जबतक कर्ता भोक्ता रूप रस बना रहता है ॥ अर्थात् अपनेको ब्रह्मसे भिन्न जानता है ॥ तबतक जन्ममरणसे रहित नहीं होता ॥ और जब ज्ञानरूप अग्नि करके कर्ता भोक्तापना कपूरवत् नाश हो जाता है ॥ तब फिर जन्ममरणको नहीं प्राप्त होता ॥ इससे यह सिद्ध हुआ कि अपनेको ब्रह्मसे भिन्न जाननाही जन्ममरणका हेतु है ॥ इसवास्ते जीवईश्वरमें भेदबुद्धि स्वीकार नहीं ॥ ४१ ॥

अथ तत्त्वमसि महावाक्यसे जीव ईश्वरकी एकतामें प्रश्न उत्तर।

ननु साहंकारस्य किंचिज्ज्ञस्य जीवस्य

निरहंकारस्य सर्वज्ञस्येश्वरस्य तत्त्वमसीति महावाक्यात् कथमभेदबुद्धिः स्यादुभयोः विरुद्धधर्माक्रान्तत्वात् ॥४२॥

टीका ॥ प्रश्न ॥ आपने जो जीवईश्वरकी एकता सिद्ध करी है अर्थात् जीवईश्वर एकही है ॥ ऐसा कहनेसे ऐसी शंका होती है कि जीव तौ अहंकारसहित है ॥ और अल्पशक्तिवाला है और ईश्वर निरहंकार है ॥ और सर्व शक्तिवाला है ॥ तौ फिर तत्त्वमसि महावाक्यसे जीव ईश्वरकी एकता कैसे हो सक्ती है ॥ क्योंकि तत् शब्दका अर्थ सर्वज्ञ चैतन्य है ॥ और त्वंपदका अर्थ अल्पज्ञ चैतन्य है ॥ इस प्रकार दोनोंमें विरुद्ध धर्म होनेसे जीव ईश्वर किस प्रकार एक हो सक्ते हैं सो कहो ॥

उत्तर ॥ तत्त्वमसि इस महावाक्यके तीन पद हैं ॥ तत्, त्वं, असि अर्थात् सो तू है ॥ इस महावाक्यका यह अर्थ है ॥ और तत्शब्दका अर्थ सर्वज्ञ चैतन्य और त्वंपदका अर्थ अल्पज्ञ चैतन्य ॥ इन दोनोंमें चैतन्य तौ एकही है ॥ परंतु सर्वज्ञता

अल्पज्ञता उपाधि करके भेद प्रतीत होता है ॥ इसवास्ते उपाधिके निषेधको कहता हूं ॥ शब्दका जो अपने अर्थसे सम्बंध तिसको शब्दकी वृत्ति कहते हैं ॥ सो वृत्ति दो प्रकारकी है ॥ एक तौ शक्ति वृत्ति और दूसरी लक्षणावृत्ति ॥ और शब्दका जो अपने अर्थसे साक्षात् संबंध तिसको शक्ति वृत्ति कहते हैं ॥ और शब्दका जो अपने वाच्यार्थ द्वारा अपेक्षित अन्य अर्थसे सम्बंध तिसको लक्षणावृत्ति कहते हैं ॥ और शक्ति वृत्ति करके जो अर्थ जाना जाय तिसको वाच्यार्थ कहते हैं ॥ और लक्षणा वृत्ति करके जो अर्थ जाना जाय तिसको लक्ष्यार्थ कहते हैं और जहांपर शक्ति वृत्ति करके यथार्थ अर्थकी प्राप्ति नहीं हो तहां लक्षणा वृत्ति आश्रय करी जाती है ॥ सो लक्षणा तीन प्रकारकी है ॥ एक तौ जहत् ॥ दूसरी अजहत् ॥ तीसरी भागत्याग ॥ और जहांपर वाच्यार्थको त्याग कर वाच्यार्थके सम्बंधीका ग्रहण हो तिसको जहत् लक्षणा कहते हैं ॥ जैसे गंगायां घोषः ॥ अर्थात् गंगामें गऊओंका वाडा है ॥ यहांपर गंगाशब्द-

का वाच्यार्थ देवनदीका प्रवाह तिसमें वाडेका होना अ-सम्भव प्रतीत हुआ ॥ इसवास्ते यहाँ पर शक्ति वृत्ति करके यथार्थ अर्थकी प्राप्ति नहीं होनेसे जहत् लक्षणा आश्रय करी गई कि गंगाशब्दका वाच्यार्थ देवनदीका प्रवाह तिस प्रवाहको त्यागकर तिसका संबंधी जो किनारा तिस किनारेमें लक्षणा करी अर्थात् गंगाजीके किनारेपर गौओंका वाडा है ॥ इसको जहत् लक्षणा कहते हैं॥और दूसरे जहाँपर वाच्यार्थसहित वाच्यार्थके सम्बंधीका ग्रहण हो तिसको अजहत् लक्षणा कहते हैं ॥ जैसे शोणो धावति ॥ अर्थात् शोण चलता है ॥ और शोणशब्दका वाच्यार्थ लालरंग तिस रंगका चलना असम्भव है ॥ इसवास्ते यहाँपर शक्ति वृत्ति करके यथार्थ अर्थकी प्राप्ति नहीं होनेसे अजहत् लक्षणा आश्रय करी कि शो-णशब्दका वाच्यार्थ लालरंग तिस लालरंगका सम्बंधी जो घोडा तिस घोडेमें वाच्यार्थ लालरंग सहित लक्षणा करी अर्थात् लालरंगका घोडा चलता है ॥ इसको अ-जहत् लक्षणा कहते हैं ॥ और जहाँपर विरोधी भागका

त्याग करके अविरोधी भागका ग्रहण किया जाय ॥ तिसको भागत्याग लक्षणा कहते हैं॥ जैसे सोयं देवदत्तः॥ अर्थात् 'सो यह देवदत्त है' सो शब्दका वाच्यार्थ भूतकाल दूर देश है ॥ और अयंशब्दका वाच्यार्थ वर्त्तमानकाल समीप देश है ॥ और इसमें केवल देशकालही विरोधी भाग है ॥ किन्तु देवदत्तका शरीर दोनोंमें एक है इसवास्ते यहाँपर भागत्याग लक्षणा करके देशकालविरोधी भागका त्याग किया और देवदत्त अविरोधी भागका ग्रहण किया इसको भागत्याग लक्षणा कहते हैं ॥ इसी प्रकार तत्त्वमसि महावाक्यमें भागत्याग लक्षणा करी अर्थात् ततशब्दका वाच्यार्थ सर्वज्ञ चैतन्य ॥और त्वंपदका वाच्यार्थ अलपज्ञ चैतन्य ॥ इसमें चैतन्य तो एकही है ॥ केवल सर्वज्ञता और अलपज्ञताही भेदकर्त्ता है ॥ इसवास्ते यहांपरभी भागत्याग लक्षणा करके सर्वज्ञता और अलपज्ञता विरोधी भागका त्याग करके अविरोधी भाग जो चैतन्य तिसका ग्रहण किया ॥ अर्थात जीवईश्वरमें जो अलपज्ञता और सर्वज्ञता है

सो कल्पित है ॥ वास्तव एक शुद्ध चैतन्यही है ॥ और वेदमेंभी लिखा है ॥ "एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म" इति श्रुतेः ॥ अर्थ ॥ एकही एक अद्वितीय ब्रह्म है अर्थात् जो कुछ दृश्यादृश्य है सो सब एक ब्रह्मही है दूसरी कोई वस्तु नहीं ॥ केवल एक चैतन्यका विलास है ॥ परंतु वास्तव है कुछ नहीं ॥ इससे यह सिद्ध हुआ कि जीवईश्वर एकही है ॥ जैसे एक घटके अनेक नाम हैं ॥ कुम्भ, कलश, घडा, इसी प्रकार एक आत्माके अनेक नाम हैं ॥ ब्रह्म, चैतन्य, ईश्वर, जीव, यह सब नाम कल्पित हैं ॥ वास्तव स्वरूप एकही है ॥ ४२ ॥

अथ त्वंपदमें जीवईश्वरकी एकतावर्णन ।

इति चेन्न । स्थूलसूक्ष्मशरीराभिमानी त्वंपदवाच्यार्थः उपाधिविनिर्मुक्तं समाधिदशासंपन्नं शुद्धं चैतन्यं त्वंपदलक्ष्यार्थः ॥ ४३ ॥

टीका ॥ स्थूल सूक्ष्म शरीरका जिसको अभिमान है ॥ सो त्वंपदका वाच्यार्थ है ॥ अर्थात् वही जीव है ॥

और जिसको स्थूल सूक्ष्म शरीरका अभिमान नहीं ॥ और समाधि दशामें सम्पन्न है ॥ अर्थात् सम्पूर्ण दृश्यादृश्यको अपना आत्माही जानता है ॥ सो त्वंपदका लक्ष्यार्थ है॥ अर्थात् वोही शुद्ध सच्चिदानंद है ॥ वह भलेही शरीरमें स्थित हो परंतु है वह ब्रह्मस्वरूप ॥ ४३ ॥

अथ तत्पदमें जीवईश्वरकी एकतावर्णन ।

एवं सर्वज्ञत्वादिविशिष्ट ईश्वरः तत्पदवाच्यार्थः । उपाधिशून्यं शुद्धचैतन्यं तत्पदलक्ष्यार्थः । एवं च जीवेश्वरयोः चैतन्यरूपेणाऽभेदे बाधकाभावः ॥ ४४ ॥

टीका ॥ इसी प्रकार सर्वशक्तिमान् जो मायाविशिष्ट ईश्वर है ॥ सो तत्पदका वाच्यार्थ है ॥ अर्थात् जैसे जीवमें अल्पशक्ति उपाधि है ॥ इसी प्रकार ईश्वरमें सर्वशक्ति उपाधि है और सर्वशक्तिरूप उपाधिसे जो शून्य है शुद्ध चैतन्य सो तत्पदका लक्ष्यार्थ है ॥ अर्थात् जैसे जीवमेंसे अल्पशक्ति त्यागी जाती है ॥ इसी प्रकार

ईश्वरमेंसे सर्वशक्ति उपाधिको त्यागकर दोनोंको चैतन्यरूप होनेसे भेदवादका अभाव है ॥ अर्थात् दोनों एकही हैं ॥ ४४ ॥

अथ जीवन्मुक्तका लक्षण।

एवं च वेदान्तवाक्यैः सद्गुरूपदेशेन च सर्वेष्वपि भूतेषु येषां ब्रह्मबुद्धिरुत्पन्ना ते जीवन्मुक्ता इत्यर्थः ॥ ४५ ॥

टीका ॥ इसी प्रकार वेदान्तवाक्योंकरके और सद्गुरुके उपदेशकरके सम्पूर्ण दृश्यादृश्यमें जिस पुरुषकी ब्रह्मबुद्धि उत्पन्न हुई है ॥ अर्थात् सम्पूर्ण दृश्यादृश्यको ब्रह्मस्वरूपही देखता है ॥ क्योंकि आदिमें शुद्ध सच्चिदानंद स्वरूप एकब्रह्म है ॥ और अन्तमेंभी एक ब्रह्म है ॥ तो फिर मध्यमें कोई दूसरी वस्तु नहीं ॥ किन्तु मध्यमेंभी ब्रह्मही है ॥ और ब्रह्म है अद्वितीय कि जिसमें शशशृंगकी नाई द्वैतका अत्यन्ताभाव है ॥ अर्थात् सम्पूर्ण दृश्यादृश्यमें जिसकी एक आत्मबुद्धि है ॥ तिसको जीवन्मुक्त कहते हैं ॥ ४५ ॥

ननु जीवन्मुक्तः कः। यथा देहोऽहं पुरुषोऽहं ब्राह्मणोऽहं शूद्रोऽहमस्मीति दृढनिश्चयस्तथा नाहं ब्राह्मणः न शूद्रः न पुरुषः किन्तु असंगः सच्चिदानंदस्वरूपः प्रकाशरूपः सर्वान्तर्यामी चिदाकाशरूपोऽस्मीति दृढनिश्चयरूपाऽपरोक्षज्ञानवान् जीवन्मुक्तः॥ ४६॥

टीका॥ प्रश्न॥ आपने जीवन्मुक्तका लक्षण तौ कहा परंतु अब खुलासा करके औरभी कहना चाहिये॥

उत्तर॥ जैसे यह अध्यास हो रहा है कि मैं ब्राह्मण हूं, मैं शूद्र हूं, मैं शरीर हूं, मैं पुरुष हूं, ऐसा जो दृढ अध्यास है॥ तिस अध्यासकी निवृत्ति होकर ऐसा दृढ निश्चय हो जाय कि न मैं शरीर हूं, और न पुरुष हूं, न ब्राह्मण हूं, न शूद्र हूं, किन्तु असंग हूं॥ और सच्चिदानंदस्वरूप हूं॥ और प्रकाशरूप हूं॥ और सर्वांतर्यामी हूं आकाशवत् अस्ति[1], भांति[2], प्रिय[3] इस प्रकार

१ है। २ प्रतीत होता है। ३ प्यारा है।

चैतन्यरूपसे सर्वत्र व्यापक हूँ ॥ ऐसे दृढ निश्चय अपरोक्ष ज्ञानवालेको जीवन्मुक्त कहते हैं ॥

अथ अपरोक्षज्ञानवर्णन ।

प्रश्न ॥ अपरोक्ष ज्ञान किसको कहते हैं ॥

उत्तर ॥ वेदमें दो प्रकारके वाक्य हैं ॥ एक तो अवांतर वाक्य हैं और दूसरे महावाक्य हैं जो ऐसा बोध कराते हैं कि ब्रह्म शुद्ध है ॥ सच्चिदानंद है ॥ सर्वांतर्यामी है ॥ ऐसा बोध करानेवालेको अवांतर वाक्य कहते हैं ॥ और अवांतरवाक्यों करके जो बोध होता है सो परोक्ष ज्ञान है ॥ और जो जीवब्रह्मकी एकताका बोध करानेवाले तत्त्वमसि आदिक वाक्य हैं तिनको महावाक्य कहते हैं ॥ और तिन महावाक्यों करके जो बोध होता है ॥ तिसको अपरोक्ष ज्ञान कहते हैं ॥ अर्थात् ब्रह्म कोई है ॥ ऐसे जाननेको परोक्ष ज्ञान कहते हैं ॥ और ब्रह्म मैं हूँ ॥ ऐसे जाननेको अपरोक्ष ज्ञान कहते हैं ॥

प्रश्न ॥ तत्त्वमसि आदि महावाक्योंमेंही प्रथम तो

भेद मालूम होता है ॥ क्योंकि तत्त्वमसि इस महावाक्यका तो यह अर्थ है कि सो ब्रह्म तू है ॥ और अहं ब्रह्मास्मि ॥ इस महावाक्यका यह अर्थ है कि सो ब्रह्म मैं हूँ ॥ इस प्रकार महावाक्योंमें भेद मालूम होता है ॥ तिस भेदकी निवृत्ति करो ॥

उत्तर ॥ तत्त्वमसि यह सामवेदका महावाक्य है ॥ और अहं ब्रह्मास्मि यह यजुर्वेदका महावाक्य है ॥ और 'प्रज्ञानम् ब्रह्म' यह ऋग्वेदका महावाक्य है ॥ और 'अयमात्मा ब्रह्म' यह अथर्वण वेदका महावाक्य है ॥ यह चार महावाक्य चारों वेदोंके हैं ॥ और इन महावाक्योंका आपसमें कुछभी भेद नहीं ॥ क्योंकि जब गुरु शिष्यको उपदेश करता है कि तत्त्वमसि अर्थात् सो तू है॥ इतना वाक्य शिष्यको श्रवण होतेही शिष्यको ऐसा बोध होता है कि अहं ब्रह्मास्मि ॥ अर्थात् सो ब्रह्म मैं हूँ ॥ इससे शिष्यको विपरीत बोध नहीं होता ॥ इससे यह सिद्ध हुआ कि तत्त्वमसि, अहं ब्रह्मास्मि आदि महावाक्योंमें कुछभी भेद नहीं ॥ केवल इतनाही है कि शिष्यको उ-

पदेश करनेके वास्ते तत्त्वमसि महावाक्य है और अपने विचारनेके वास्ते अहं ब्रह्मास्मि महावाक्य है ॥ परंतु दोनोंके अर्थमें कुछभी भेद नहीं ॥

शंका ॥ तत्त्वमसि आदि महावाक्योंसे जब ऐसा अपरोक्ष ज्ञान हो जावे कि मैं ब्रह्म हूँ ॥ तौ फिर अन्तःकरणमेंसे मलविक्षेपकी निवृत्ति करनेका कुछभी प्रयोजन नहीं क्योंकि मलविक्षेपकी निवृत्ति होनेके पश्चात्भी तौ ऐसाही ज्ञान होगा कि मैं ब्रह्म हूँ तौ फिर निष्फल पुरुषार्थ क्यों करे ॥

उत्तर ॥ सुनने सुनानेसे भलेही अपरोक्ष ज्ञान हो जावे कि मैं ब्रह्म हूं ॥ परंतु जबतक मलविक्षेप दोष दूर होकर अनुभव अपरोक्ष ज्ञान नहीं होगा ॥ तबतक परमानंदकी प्राप्ति कभी नहीं होगी तिसमें एक दृष्टांत है जैसे कोई एक राजा एक पंडितके ऊपर बहुत प्रसन्न था ॥ अर्थात् ऐसा मोहके वश हो रहा था कि जैसे उस पंडितकी आज्ञा होती राजा वैसेही करता॥परंतु एक दिन संपूर्ण मंत्रियोंने मिलकर ऐसा विचार किया कि राजाका

मोहके वशमें होना यह राज्य नष्ट होनेका हेतु है ॥ तब उन मंत्रियोंने उस पंडितसे कह दिया कि राजाजीकी आज्ञा तुमको दरबारमें आनेकी नहीं ॥ और उसी वक्त राजासेभी कह दिया कि पंडितजीका शरीर बहुत बीमार है ॥ जब राजाने ऐसा सुना तब राजा बहुत दुःखी हुआ ॥ और यह आज्ञा दी कि जो कुछ द्रव्य खरच पडे सो ले जाओ ॥ और वैद्यको ले जाकर उनकी औषधी करो ॥ तब उन मंत्रियोंने बहुतसा द्रव्य ले जाकर घरोंमें रख लिया और कुछ वैद्यको दिया ॥ तब उस वैद्यने राजासे लौटकर यह कहा कि हे महाराज ! वह पंडितजी तो असाध्य बीमार है ॥ अर्थात् वह अच्छे नहीं होंगे ॥ ऐसा सुनकर राजाने कहा कि हम आप चलकर पंडितजीको देखेंगे ॥ जब मंत्रियोंने ऐसा सुना तब मंत्री बहुत घबडाये ॥ और उनमेंसेही किसी आदमीने यह कहा कि पंडितजीकी तो मृत्यु हो गई ॥ जब राजाने ऐसा सुना कि पंडितजीकी मृत्यु हो गई तब उसी समय राजा बेहोश होकर गिर पडा ॥ और महान् दुःखी हुआ ॥ परंतु उस समय

एक विद्वान् आय प्राप्त हुआ॥ उसने राजाको बहुत दुःखी देखकर उसने राजाको उपदेश किया कि हे राजन्! तू तौ बडा शूर वीर है॥ और धर्मात्मा है॥ तैंने यह कायरता कहांसे धारण करी॥ अर्थात् इस कायरताके धारण करने योग्य तुम नहीं हो॥ तब राजाने कहा कि हे विद्वन्! मेरा सम्पूर्ण राज्य नष्ट हो जाता॥ और शरीरभी नष्ट हो जाता॥ परंतु मेरेको इतना दुःख नहीं होता कि जितना इस पंडितकी मृत्युसे हुआ॥ तब उस विद्वान्ने कहा कि हे राजन्! जो तुम जीवात्माको रोते हो तौ जीवात्मा अमर है॥ और एक है और शुद्ध है॥ तौ फिर उसकी मृत्यु और वियोग कहाँ सिद्ध हो सक्ता है॥ और जो शरीरको रोते हो तौ शरीर आदिअन्तवाला है॥ और दुःखरूप है॥ तौ फिर उसके नाश होनेकी क्या चिन्ता है॥ और दूसरे एक दिन तुमारे शरीरकाही तुमसे वियोग हो जायगा तौ फिर उस पंडितके वियोगका दुःख मानना यह अत्यन्त मूर्खता है॥ ऐसा सुनकर राजाको बोध

हो गया ॥ और राजाने उठकर यह आज्ञा दी कि जो कुछ द्रव्य खरच हो उसको ले जाकर पंडितजीके सब क्रिया कर्म्म करो ॥ तब उन मंत्रियोंने द्रव्यको घरोंमें रख लिया और लौटकर राजासे कहा कि पंडितजीके सब क्रिया कर्म्म हो गये ॥ परंतु वह पंडित जब दरबारमें जाना चाहता था तभी उसको द्वारपाल नहीं जाने देते थे ॥ तब उस पंडितने ऐसा विचार किया कि जब कभी राजाकी सवारी निकलें तब उस समय राजासे मिलेंगे ॥ जब मंत्रियोंको मालूम हुआ कि पंडितजीने यह विचार किया है ॥ तब उसी समय मंत्रियोंने राजाको ऐसा संस्कार डाल दिया कि पंडितजी तौ ब्रह्मराक्षस हो गये ॥ और हमको बहुत बडी चिन्ता है कि आपसे पंडितजीकी बहुत प्रीति थी इसवास्ते आपको पंडितजी कहीं दुःख नहीं देवे ॥ ऐसा सुनकर राजा बहुत दुःखी हुआ और बहुत डरा ॥ परंतु एक दिन ऐसा समय आय प्राप्त हुआ कि राजाकी सवारी चली जाती थी तभी उस पंडितने एक मंदिरके

ऊपर खडे होकर राजासे आशीर्वाद कहा ॥ तब उस राजाने देखा कि यह पंडितजी तो वही है ॥ परंतु जब उस पंडितकी मृत्युका और उसके ब्रह्मराक्षस होनेका चिन्तवन जब राजाने किया तब राजाको बहुत भय हुआ ॥ उस भयसे राजा उस पंडितको त्यागकर चला गया ॥ जैसे राजाको उस पंडितका अपरोक्षज्ञानभी हो गया कि यह पंडित वहही है ॥ परंतु वह ब्रह्मराक्षस-भाव जो अन्तःकरणमें था उसने राजाको उस पंडि-तकी प्राप्ति नहीं होने दी ॥ इसी प्रकार सुनने सुनानेसे भलेही अपरोक्ष ज्ञान हो जाव कि मैं ब्रह्म हूँ ॥ परंतु जब तक ब्रह्मराक्षसभावरूप मलविक्षेप अन्तःकरणमें रहता है ॥ तबतक परमानंदस्वरूप आत्माकी प्राप्ति नहीं होने देता ॥ इसवास्ते श्रीगुरुके चरणोंमें प्राप्त होकर मलविक्षेपकी निवृत्ति करना अवश्य उचित है ॥ और मलविक्षेप दोष दूर होनेके पश्चात् जो अनुभव होता है ॥ तिसको अपरोक्ष ज्ञान कहते हैं ॥ और तिस अपरोक्ष ज्ञानवालेकोही जीवन्मुक्त कहते हैं॥ऐसे जो मेरे श्रीगुरु हैं तिनको मेरा कोटानुकोट प्रणाम हैं ॥ ४६ ॥

अथ ज्ञानसे सम्पूर्ण कर्म्मोंकी निवृत्तिवर्णन।

ब्रह्मैवाहमस्मीत्यपरोक्षज्ञानेन निखिल-कर्मबंधविनिर्मुक्तः स्यात् । कर्माणि कतिविधानि संतीति चेत् आगामिसंचितप्रारब्धभेदेन त्रिविधानि संति ॥ ४७ ॥

टीका ॥ मैं ब्रह्म हूँ, ऐसे अपरोक्षज्ञान होनेसे पुरुष सम्पूर्ण कर्मोंके बंधनसे छूट जाता है ॥ और वास्तव तौ आत्मा कर्मोंके बंधनसे रहितही है ॥ क्योंकि कर्मोंका करना और उनके फलका भोगना यह मनका धर्म है॥ किन्तु आत्माका नहीं ॥ परंतु भूलकर अपनेमें जो अध्यास करा हुआ है कि मैं करता हूँ, मैं भोक्ता हूँ ज्ञानसे ऐसे अध्यासकी निवृत्ति होकर यह दृढ निश्चय हो जाता है कि मैं तो शुद्ध हूँ ॥ कर्त्ता भोक्ता मन है ॥ इस प्रकार अपरोक्षज्ञान होनेसे पुरुष सम्पूर्ण कर्म्मोंके बंधनसे छूट जाता है ॥ यदि तुम कहो कि कर्म कौनसे हैं ॥ तौ श्रवण करो। एक तौ आगामी कर्म है, दूसरे संचित, तीसरे प्रारब्ध इस भेद करके तीन प्रकारके कर्म हैं ॥

प्रश्न ॥ आपने तीन प्रकारके कर्म तो कहे ॥ परंतु अब भिन्न भिन्न इनके स्वरूपको वर्णन करो ॥ ४७ ॥

अथ आगामी कर्मवर्णन ।

ज्ञानोत्पत्त्यनंतरं ज्ञानिदेहकृतं पुण्यपापरूपं कर्म यदस्ति तदागामीत्यभिधीयते ॥ ४८ ॥

टीका ॥ ज्ञानकी उत्पत्तिके पश्चात् ज्ञानीके शरीरकरके जो पुण्यपापरूप कर्म हो ॥ अर्थात् ज्ञानीसे जो सर्व पुरुषोंको उपदेश होता है सो तो पुण्यरूप कर्म है॥ और ज्ञानीके शरीरसे स्वाभाविक जो हिंसा होती है सो पापरूप कर्म है ॥ तिस पुण्यपापरूप कर्मको आगामी कहते हैं ॥ अथवा और जो सर्व पुरुष इस समय पुण्यपापरूप कर्म करते हैं ॥ तिनको आगामी कर्म कहते हैं ॥ ४८ ॥

अथ संचितकर्मवर्णन ।

संचितं कर्म किम् । अनंतकोटिजन्मनां

बीजभूतं सत् यत्कर्मजातं पूर्वार्जितं तिष्ठति तत्संचितं ज्ञेयम् ॥ ४९ ॥

टीका ॥ प्रश्न ॥ संचित कर्म किसको कहते हैं ॥

उत्तर ॥ अनेक करोडों जन्मोंका बीजरूप हुआ हुआ जो कर्म पूर्वका किया हुआ शुभाशुभरूप ऐसा जो स्थित है तिसको संचित कर्म कहते हैं ॥ ४९ ॥

अथ प्रारब्धकर्म वर्णन ।

प्रारब्धकर्म किमिति चेत् । इदं शरीरमुत्पाद्य इह लोके एवं सुखदुःखादिप्रदं यत्कर्म तत्प्रारब्धभोगेन नष्टं भवति॥५०॥

टीका ॥ प्रश्न ॥ प्रारब्ध कर्म किसको कहते हैं ॥

उत्तर ॥ इस शरीरको उत्पन्न करके इस लोकमें सुखदुःखोंको देनेवाला जो कर्म है ॥ तिसको प्रारब्ध कहते हैं ॥ और सो प्रारब्धकर्म भोगनेसेही नाश होता है॥और उसके नाश होनेकी कोईभी युक्ति नहीं ॥दृष्टान्त॥ जैसे किसी पुरुषने बहुतसे बाण तर्कसमें रक्खे हुए हैं ॥ और एक बाण हाथमें पकड रक्खा है ॥ और एक

बाण छोड दिया है ॥ जैसे वह पुरुष तर्कसके बाणोंको-भी रोक सक्ता है॥ और जो हाथमें पकड रक्खा है तिस बाणकोभी रोक सक्ता है परंतु जो बाण हाथमेंसे छोड दिया है ॥ तिसको नहीं रोक सक्ता॥ इसी प्रकार संचित कर्म जो बहुतसे जमा है॥ सो सब नाश हो सकते हैं॥और आगामी कर्म जो हाथमें पकड रक्खे हैं सोभी नाश हो सक्ते हैं ॥ परंतु जो प्रारब्धरूप बाण हाथसे छूट गया है सो विना भोगे किसी युक्तिसेभी नाश नहीं हो सक्ता इस प्रकार आगामी और संचित कर्म तो नाश हो सक्ते हैं ॥ परंतु प्रारब्ध कर्म विना भोगे नाश नहीं हो सक्ता है ॥ और वेदमेंभी ऐसा लिखा है कि "प्रारब्धकर्मणां भोगादेव क्षयः" इति श्रुतेः ॥ अर्थ ॥ प्रारब्ध कर्म भोगनेसेही नाश होता है ॥ इससे यह सिद्ध हुआ कि और सर्व कर्म तो नाश हो जाते है परंतु प्रारब्ध कर्म विना भोगे नाश नहीं होता है ॥

प्रश्न ॥ यहांपर तो ऐसा लिखा है कि प्रारब्ध कर्म विना भोगे नाश नहीं होता ॥ और श्रीमद्भगवद्गी-

तामें श्रीकृष्णजीने ऐसा लिखा है कि जैसे प्रचंड अग्नि सर्व ईंधनको दाह कर देती है ॥ इसी प्रकार ज्ञानरूप अग्नि सर्वकर्म्मोंको नाश कर देती है ॥ इन दोनों वाक्योंमेंसे कौनसा वाक्य यथार्थ है सो कहो ॥

उत्तर ॥ यह दोनोंही वाक्य यथार्थ हैं ॥ क्योंकि कर्म्मोंका करना और सुखदुःखका भोगना यह शरीरका धर्म है ॥ आत्माका नहीं ॥ और जो पुरुष अपनेमें आरोपण करता है ॥ वह पुरुष अज्ञानी है और जिस पुरुषको ऐसा ज्ञान हो गया कि मैं न कर्ता हूँ न भोगता हूँ ॥ यह तो शरीरका धर्म है ॥ शरीर भलेही भोगे ॥ मैं तो शुद्ध हूँ ॥ इस प्रकार ज्ञानवान्का प्रारब्धकर्मभी निवृत्त हो जाता है ॥ क्योंकि जिस किसी पुरुषकी पदार्थोंमें आसक्तता होती है ॥ उसी पुरुषको पदार्थोंके नाश होने बननेसे सुखदुःख होता है ॥ और जिसकी पदार्थोंमें आसक्तता नहीं होती उसको सुखदुःख नहीं होता ॥ इससे यह सिद्ध हुआ कि आसक्तताही सुखदुःखका हेतु है ॥ जैसे चौपडके खेलनेवाले पुरुष काष्ठकी नर्दमें आसक्तता कर लेते हैं ॥ और खे-

लते खेलते जिस पुरुषकी नर्द मारी जाती है ॥ उसी पुरुषको दुःख होता है ॥ और जिस पुरुषकी वह नर्द नहीं होती उसको दुःख नहीं होता ॥ अब देखिये कि काष्ठकी नर्द तो मारी जाती है ॥ परंतु आसक्तता होने- से दुःख उस पुरुषको होता है ॥ इसी प्रकार जिस पुरु- षकी पदार्थोंमें आसक्तता होती है ॥ उसीको सुख दुःख होता है ॥ और ज्ञानवान्‌की तो पदार्थोंमें आसक्तता होतीही नहीं ॥ इसवास्ते ज्ञानवान्‌का प्रारब्ध कर्मभी निवृत्त हो जाता है ॥ और वेदकाभी यही तात्पर्य्य है कि सूक्ष्म शरीर कर्म्मोंको कर्ता है ॥ इसवास्ते उसीको- ही अवश्य भोगना पडता है ॥ किन्तु यह तात्पर्य न- हीं है कि आत्माहीको भोगना पडता है ॥ ५० ॥

संचितं कर्म ब्रह्मैवाहमिति निश्चयात्म- कज्ञानेन नश्यति । आगामि कर्म अपि ज्ञानेन नश्यति । किंच आगामिकर्मणां नलिनीदलगतजलवत् ज्ञानिनां संबंधो नास्ति ॥ ५१ ॥

टीका ॥ मैं ब्रह्म हूँ ऐसे निश्चयात्मक ज्ञानसे संचित कर्म नाश हो जाते हैं ॥ और आगामी कर्मभी ज्ञानसे नाश हो जाते हैं ॥ और आगामी कर्म्मोंका ज्ञानिको सम्बंध नहीं ॥ क्योंकि ज्ञानीके शरीरसे जो क्रिया होती है ॥ सो सब स्वाभाविक होती है ॥ किन्तु आसक्तताासे नहीं होती ॥ जैसे पत्ता वृक्षसे टूटकर रससे रहित हो जाता है ॥ और उसको जिस तरफ वायु ले जावे वह उसी तरफ चला जाता है ॥ परंतु अपनी इच्छासे कहीं नहीं जाता ॥ इसी प्रकार ज्ञानवान्का शरीर कर्मरूपी वृक्षसे टूटकर इच्छारूपी रससे रहित हो जाता है ॥ और शरीरका प्रारब्धरूपी वायु जिस तरफ ले जावे ॥ ज्ञानवान्का शरीर उसी तरफ चला जाता है परंतु अपनी इच्छासे किसी क्रियामेंभी नहीं प्रवृत्त होता ॥और इसवास्ते ज्ञानिको आगामी कर्म्मोंका सम्बंध नहीं ॥जैसे कमलका पत्ता जलमेंही रहता है ॥ परंतु जल उसको स्पर्श नहीं करता ॥ इसी प्रकार ज्ञानीके शरीरसे स्वाभाविक भलेही शुभाशुभ रूप कर्म होवे परंतु उन कर्म्मोंका सम्बंध ज्ञानीको नहीं ॥ ९१ ॥

अथ ज्ञानवानके आगामी कर्म्मोंके अधिकारीवर्णन।

किंच ये ज्ञानिनं स्तुवंति भजंति अर्चयंति तान्प्रति। ज्ञानिकृतम् आगामिपुण्यं गच्छति ये ज्ञानिनं निंदंति द्विषंति दुःखप्रदानं कुर्वंति तान्प्रति ज्ञानिकृतं सर्वं आगामि क्रियमाणं यदवाच्यं कर्म पापात्मकं तद्गच्छति ॥ ५२ ॥

जो पुरुष ज्ञानीकी स्तुति करता है, और पूजन करता है, और सेवा करता है, और उनके वाक्योंको श्रवण करके धारण करता है उस पुरुषको ज्ञानीके आगामी पुण्यरूप कर्म प्राप्त होते हैं॥ और जो पुरुष ज्ञानीको दुःख देता है, और निंदा करता है, और ज्ञानीसे द्वेष रखता है, तिस पुरुषको ज्ञानीके आगामी पापरूप कर्म प्राप्त होते हैं॥ इस प्रकार ज्ञानीको आगामी कर्म्मोंका सम्बंध नहीं होता॥ और इसवास्ते ज्ञानीक

फिर जन्मभी नहीं होता ॥ क्योंकि जन्मका हेतु पुण्य-पापरूप कर्म है ॥ सो ज्ञानीके नाश हो जाते हैं॥५२॥

अथ आत्मज्ञानका माहात्म्यवर्णन ।

तथा चात्मवित्संसारं तीर्त्वा ब्रह्मानंदं इहैव प्राप्नोति ॥ ५३ ॥

टीका ॥ इसी प्रकार आत्मवेत्ता संसार समुद्रसे पार होकर इसी शरीरमें ब्रह्मानंदको प्राप्त हो जाता है ॥ और वेदमेंभी लिखा है ॥ "तरति शोकमात्मविदिति" श्रुतेः ॥ अर्थ ॥ आत्मवेत्ता दुःखरूप संसारसे पार होता है ॥ और कोई पुरुष नहीं हो सक्ता,क्योंकि जैसे मकडी अपने थूकसे जालेको पूरती है ॥ और अपने आपही उसमें फसकर दुःख पाने लगती है ॥ परंतु जबतक उसको यह ज्ञान नहीं होता कि यह जाला मेराही थूक है ॥ और इसके बनानेवालाभी मैंही हूं तबतक फसी हुई महान् दुःख पाती है ॥ और जब ऐसा निश्चय कर लेती है कि यह जाला मेराही थूक है ॥ और बनायाभी मैंनेही है ॥ तब उस जालेको खा लेती है ॥ और महान् सुखी हो

जातीहै इसी प्रकार जबतक इस पुरुषको यह निश्चय नहीं होता कि यह संसार मेराही संकल्प है ॥ और संकल्प-का करनेवाला मैंही हूं ॥ तबतक संसारमें फँसा हुआ महादुःख पाता है ॥ और जब ऐसा दृढ निश्चय कर लेता है कि यह सब संसार मेराही संकल्प है और यह संकल्प हुआभी मेरेहीसे है ॥ तब संकलपको निवृत्त करके परमानंदको प्राप्त होता है ॥ इसी प्रकार आत्म-वेत्ता शोकरूप संसारसे पार होता है ॥ ५३ ॥

तनुं त्यजतु वा काश्यां श्वपचस्य गृहेऽ-
थवा ॥ ज्ञानसंप्राप्तिसमये मुक्तोऽसौ वि-
गताशयः ॥ इति स्मृतेश्च ॥ ५४ ॥

टीका ॥ ज्ञानवान् चाहे काशीजीमें शरीरको त्यागे और चाहे चांडालके गृहमें शरीरको त्यागे वह ज्ञान-वान् सम्पूर्ण जगह मुक्त है ॥ और वही विगत आशय है अर्थात् ज्ञानवान्ही विषयोंसे निवृत्त होता है ॥ किन्तु अज्ञानी नहीं होता ॥ और योगवासिष्ठ निर्वाण प्रकरणमें-भी लिखा है ॥ ५४ ॥

खलाः काले काले निशि निशितमोहैक-
मिहिकागतालोके लोके विषयशतचौ-
राःसुचतुराः॥ प्रवृत्ताः प्रोद्युक्ता दिशि दि-
शि विवेकैकहरणे रणे शक्तास्तेषां क
इव विदुषः प्रोझ्यसुभटाः ॥ १ ॥

अथाऽन्वयः ॥ लोके विषयशतचौराः सुचतुराः कथंभूते लोके निशि निशितमोहैकमिहिकागतालोके ॥ कथंभूताः चौराः खलाः पुनः कथंभूताः चौराः काले काले दिशि दिशि विवेकैकहरणे प्रोद्युक्ताः प्रवृत्ताः ॥ तेषां विषयशतचौराणां रणे विदुषः प्रोझ्य के सुभटाः शक्ताः ॥ इत्यन्वयः ॥ १ ॥

भाषाटीका ॥ पुरुषोंमें विषयरूपी सैंकडों चोर बडे चतुर लग रहे हैं ॥ कौनसे पुरुषोंमें कि अज्ञानतारूपी रात्रि तिसमें पडा हुआ जो मोहरूपी कोहल तिसकरके नाश हो गई है दृष्टि जिन पुरुषोंकी तिन पुरुषोंमें विषयरूपी सैंकडों चोर लग रहे हैं ॥ कैसे हैं विषयरूपी चोर कि महान् दुष्ट ॥ और फिरभी कैसे हैं कि हरवक्त चारों तरफसे विवेकरूपी धनको चुरानेके वास्ते कमर

बांधे हुए तैयार हैं॥ तिन विषयरूपी चोरोंके साथ विद्वान्के सिवाय कौनसा शूरवीर युद्ध करनेको समर्थ है॥ अर्थात् ज्ञानरूप सूर्य्यकरके अज्ञानतारूपी रात्रि और मोहरूपी कोहल नाश हो गया है जिस पुरुषका वह पुरुष उन विषयरूपी चोरोंके जीतनेको समर्थ है॥ किन्तु अज्ञानी उन चोरोंसे धोकाही खाता है॥ और ज्ञानकी प्राप्ति विना श्रीगुरुकी कृपाके नहीं होती॥ १॥

प्रश्न॥ गुरु और शिष्य इन दोनोंके लक्षण पृथक् पृथक् वर्णन करो॥

अथ गुरुशिष्यलक्षणवर्णन।

श्रुति॥ ब्राह्मणो निर्वेदमायात्। तद्विज्ञानार्थं सद्गुरुमेवाभिगच्छेत् श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठं इति श्रुतेः॥ १॥ हरिः ॐ॥

भाषाटीका॥ ब्रह्मस्वरूप जो अपना आत्मा है॥ तिसको जाननेकी इच्छावाला पुरुष संसारसे विरागको प्राप्त होकर सद्गुरुओंके चरणोंमें प्राप्त हो॥ समित्पाणी॥ अर्थात् हाथमें दांतुन लिये हुए और गुरु कैसे

होवे कि श्रोत्रिय अर्थात् वेद शास्त्रके ज्ञाता क्योंकि जो कुछ शिष्यको शंका उत्पन्न हो उसको निवृत्त कर देवे॥ और फिर कैसे होवे गुरु कि ब्रह्मनिष्ठ अर्थात् ब्रह्महीमें हो निष्ठा जिनकी क्योंकि जो केवल वेदशास्त्रकेही ज्ञाता हुए और यथावत् निष्ठावाले नहीं हुए तौ शिष्यकी शंकाको तौ निवृत्त कर देंगे परंतु मोक्ष नहीं कर सक्ते क्योंकि जब उनकी अपनीही मोक्ष नहीं हुई तौ फिर शिष्यकी मोक्ष क्या कर सक्ते हैं॥ और जो केवल ब्रह्मनिष्ठही हुए॥ और वेदशास्त्रके ज्ञाता नहीं हुए॥ तौ वह अपनी मोक्ष कर सक्ते हैं॥ परंतु शिष्यकी मोक्ष नहीं कर सक्ते क्योंकि जबतक प्रथम शिष्यकी शंकाही निवृत्त नहीं होगी॥ तौ उसकी मोक्ष क्या हो सक्ती है॥ इसवास्ते गुरु श्रोत्रिय और ब्रह्मनिष्ठ दोनों गुणोंवाले होने चाहिये॥ और शिष्यभी ऐसा होना चाहिये कि जो तन मन धन, यह तीनों वस्तु अपने श्रीगुरुको अर्पण कर देवे धन इस प्रकार अर्पण नहीं किया जाता कि जो स्त्रीपुत्रादिकोंको गुरुके अर्पण करें॥ किन्तु स्त्रीपुत्रादि-

कोंको त्याग करके श्रीगुरुके चरणोंमें प्राप्त होवे ॥ और तन इस प्रकार अर्पण किया जाता है कि जो कुछ गुरुओंकी आज्ञा हो उसीके अनुसार चेष्टा करना चाहिये ॥ किन्तु उनकी आज्ञामें तर्क नहीं करना चाहिये ॥ और मन इस प्रकार अर्पण किया जाता है कि हर वक्त श्रीगुरुके चरणोंका ध्यान करा करें ॥ और जिस तरफ दृष्टि पडे उस तरफ श्रीगुरुही दीखै इस प्रकार तन मन धन अर्पण करना यह लक्षण शिष्यमें होना चाहिये॥और पूर्वोक्त लक्षण गुरुओंमें होने चाहिये ॥ और पूर्वोक्त गुणयुक्त जो मेरे श्रीगुरु हैं ॥ तिनको मेरा कोटान कोट नमस्कार हैं ॥ और तिन गुरुओंके चरणोंकी ऐसी कृपा है मेरे ऊपर कि जिसको देखकर तिन चरणोंको मैं धन्यवाद दूं परंतु ऐसी महिमा है तिन चरणोंकी कि जिसके लिखनेकी मेरी लेखनीमें सामर्थ्य नहीं॥ क्योंकि तिन चरणोंकी ऐसी महिमा है कि जिसके फलको प्राप्त होकर सबको चुप होना पडता है ॥ और अब तिन चरणोंकी कृपासे मैंभी चुप होता हूं ॥ ॥ हरिः ॐ ॥ ॥ समाप्त ॥

॥ होरी ॥

कोई ऐसा रंग बनालो जासे नहीं लगे दाग तनको ॥
॥टेक॥सतसंग साबुन लाय धोवे लो पापीरे मनको॥
विचाररंगमें बोर पहिर लो सूहे जामनको ॥ १ ॥
होरी खेलन चलो यादकर पिछले फागुनको ॥
तू शुद्ध सच्चिदानंद भूल मत अपने आननको ॥२॥
ज्ञानगुलालकी फैट बांध अद्वैति अबीरनको ॥
कर्मकुमकुमा फैंक छोड दे झूंठे खेलनको ॥ ३॥
होरी जीतैं सदा संत सब कर कर साधनको ॥
शंकर हो आनंद ध्याय जब श्रीगुरुचरणनको ॥४॥

श्रीयुत परमहंसोदासीनभूषण श्री १०८ श्रीस्वामी प्रकाशानंदजी महाराजके शिष्य स्वामी शंकरानंदने यह शंकरानन्दप्रकाशिका टीका निर्मित करी ॥

संवत् १९५३ आषाढ शुक्ल द्वितीया रविवार.

पुस्तक मिलनेका ठिकाना— गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
"लक्ष्मीवेंकटेश्वर" छापाखाना,
कल्याण-मुंबई.